RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC/CPM/01/KPHO/2019-21
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक
सदस्यता शुल्क
100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

गौतम बुद्ध

बाबा साहेब डा0 अम्बेडकर

फरवरी-2020 | वर्ष - 12 | अंक : 1 | मूल्य : 5/-

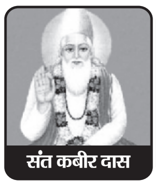
संत कबीर दास

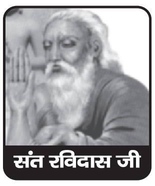
संत रविदास जी

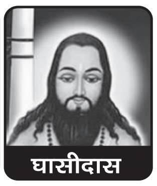
घासीदास

बिरसामुण्डा

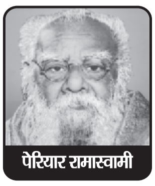
पेरियार रामास्वामी

छत्रपति शाहूजी महाराज

सन्त गाडगे

महात्मा ज्योतिबा राव फुले

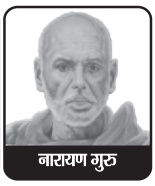
नारायण गुरु

सावित्री बाई फुले

कांशीराम

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड,
कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल :
पुष्पेन्द्र गौतम हिन्दुस्तानी, मल्हौसी, औरैया, उ.प्र.
मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य :
दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001,
मो. : 09887512360, 0144-3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-नवीन मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020•IFSC CODE-SBIN005307

बीसवीं पहेली कलि वर्ज्य अथवा पाप को पापकर्म घोषित किए बिना स्थगन की ब्राम्हणवादी कला

ब्राम्हणों की कलिवर्ज्य नामक बहुत कम लोगों को ज्ञात है। कलियुग को अन्य ब्राम्हणवादी हठधर्म से इसको भ्रमित नहीं करना चाहिए।

कलिवर्ज्य की हठधर्मी में कुछ प्रथाओं और व्यवहारों को गिनाया गया है जो अन्य युगों में व्यवहारिक थीं लेकिन कलियुग में उनके अनुपालन पर पाबंदी है। इन अनुदेशों के प्रसंग विभिन्न पुराणों में यत्र-तत्र उपलब्ध हैं, परन्तु आदित्य पुराणों में उन्हें संहिताबद्ध करके संग्रहीत कर दिया गया है। कलिवर्ज्य प्रथाएं निम्नलिखित हैं :

1. विधवा से पुत्र उत्पन्न करने हेतु पति के भाई की नियुक्ति।
2. किसी (विवाहित) स्त्री का पुनर्विवाह (उसका जिसका विवाह पक्का नहीं हुआ) (अथवा उसका जिसका विवाह पक्का हो गया था) दूसरे पति के साथ प्रथम पति की मृत्यु के उपरांत।
3. तीनों द्विज वर्णों के बीच अन्य वर्णों की कन्याओं से विवाह।
4. आततायी ब्राम्हण का सीधे युद्ध में भी वध।
5. किसी द्विज से व्यवहार (उसके साथ खान-पान जैसा व्यवहार) जो समुद्र यात्रा पर जाता है, चाहे उसने प्रायश्चित भी क्यों न कर लिया हो?
6. सात्र का उपनयन कराना।
7. जल हेतु कमण्डल लेकर चलना।
8. लम्बी यात्रा पर जाना।
9. गोमेध में गाय की बलि।
10. श्रौतमणि यज्ञ तक में मद्यपान।
11. और 12 अग्नि होत्र के पश्चात बचे हुए प्रसाद को ग्रहण करने हेतु उसमें प्रयुक्त कलछी का चाटना और बाद में अग्निहोत्र में उस कलछी का प्रयोग करना।
13. शास्त्रानुसार आश्रम जीवन यापन में प्रवेश।
14. (जन्म और मृत्यु होने पर) व्यवहार और वैदिक ज्ञान के आधार पर अशुचिता की अवधि घटाना।
15. प्रायश्चित स्वरूप मौत का विधान ब्राम्हणों के लिए।
16. नैति पाप (स्वर्ण) चोरी को छोड़कर और पापियों (महापातकों) के साथ संपर्क होने पर (गुप्त) प्रायश्चित।
17. वर, अतिथि और पितरों को मंत्रों के साथ जानवरों के मांस की भेंट।
18. औरस तथा दत्तक पुत्र के अतिरिक्त अन्य को पुत्रों के रूप में स्वीकार करना।
19. उन व्यक्तियों के साथ प्रायश्चित के उपरांत भी संपर्क, जिन्होंने उच्च जाति की महिला के साथ संभोग किया है।
20. यदि किसी वृद्ध अथवा सम्मानित व्यक्ति की पत्नी ने परपुरूष से संभोग किया है और उसके लिए वह प्रताड़ित की गई है, उसका परित्याग।
21. किसी एक व्यक्ति के लिए दूसरे का वध।
22. झूठन छोड़ने।
23. जीवन के लिए (पैसा लेकर) किसी देवता विशेष की मूर्ति की पूजा का संकल्प।
24. मृत्यु के उपरांत अग्निक्रिया के अधीन फूल चुनने के पश्चात उन व्यक्तियों का स्पर्श।
25. ब्राम्हण द्वारा पशु की वास्तविक बलि।
26. ब्राम्हण द्वारा सोम पादप का विक्रय।
27. छह बार का भोजन अथवा छ समय तक भूखा रहने के उपरांत भी ब्राम्हण का शूद्र से भी भोजन ग्रहण करना।
28. ब्राम्हण गृहस्थ का अपने शुद्र वर्ण के दास के हाथ से बना भोजन ग्रहण करना, गोशालाा में और उन व्यक्तियों के हाथ का भोजन करना जो बटाई पर उसकी खेती करते हैं।
29. बहुत लम्बी तीर्थ यात्रा पर जाना।
30. गुरू पत्नी के साथ वैसा व्यवहार जैसा स्मृतियों में गुरू के लिए निर्धारित है।
31. ब्राम्हण द्वारा विपरीत परिस्थितियों में गलत कार्यों द्वारा जीवनयापन के लिए कल के लिए भेजन की परवाह न करना।
32. जातकर्म होम के समय ब्राम्हण द्वारा अरनी (अग्नि उत्पन्न करने के लिए दो लड़कियों के खण्ड) स्वीकार करना जिसके अनुसार शिशु के जातकर्म से उसके पाणिग्रहण तक के संस्कार कराने का कार्यक्रम हो।
33. ब्राम्हण द्वारा सतत यात्रा।
34. बांस निर्मित फूंकनी के बिना आग में मुंह से फूंक मारना।
35. शास्त्रों में वर्णित प्रायश्चित के पश्चात भी किसी ऐसी स्त्री को जाति में सम्मिलित होने की स्वीकृति देना जो बलात्कार से कलंकित हो चुकी हो।
36. संन्यासी द्वारा सभी वर्णों (शूद्रों सहित) से भिक्षा ग्रहण करना।
37. जमीन से निकाले जाने वाले जल का पान करने हेतु दस दिन तक प्रतिक्षा।
38. अध्यापक को दीक्षांत पर (मांगने पर) शास्त्रानुसार दक्षिणा।
39. ब्राम्हण और अन्यों के लिए शूद्रों से भोजन बनवाना।
40. वृद्धों द्वारा चट्टान से अथवा आग से कूदकर आत्महत्या।
41. झूठे पानी का सम्मानित व्यक्तियों द्वारा आचमन, चाहे वह गाय का ही झूठा क्यों न हो?
42. पिता और पुत्र के मध्य झगड़े में साक्षी को दंडित करना।
43. संन्यासी जहां रात हो जाए, वहीं शयन करे।

इस कलि वर्ज्य संहिता के विषय में यह आश्चर्य की बात है कि इसके महत्व को पूर्ण समझा नहीं गया। इसे उन वर्जित कार्यों की सूचीमात्र समझा गया जो कलियुग में निषिद्ध हैं। परन्तु वर्जित कार्यों की सूची के पीछे और कुछ भी है। इसमे संदेह नही है कि कलि वर्ज्य संहिता में अनेक कार्यों के लिए वर्णन है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इन कार्यों को अनैतिक माना गया है, निंदित पापकर्म अथवा समाज में हानिकर? इसका उत्तर है नहीं। प्रश्न यह है कि यदि वर्जित है जो निंदित क्यों नहीं है? यही कलि वर्ज्य संहिता की पहेली है। बिना निंदित बताए प्राचीनकाल के इन व्यवहारों को वर्जित घोषित करने की प्रणाली प्राचीन के विपरीत है। एक उदाहरण लेते हैं। आपस्तम्ब धर्म सूत्र में सम्पूर्ण सम्पति ज्येष्ठ पुत्र को ही दिया जाना वर्जित है। परन्तु वह इसकी निंदा करता है। ब्राम्हणों ने यह प्रणाली क्यों अपनाई कि वर्जित है किन्तु निंदित नहीं। इस परित्याग के पीछे कोई विशेष कारण होना चाहिए। वह कारण क्या है ?

साभार : बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय
खण्ड-8 (पृष्ठ सं० 237 से 240 तक)
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

राजनीतिक दान

कांग्रेस की अस्पृश्यों को मेहरबानी करके मारने की योजना

I

बम्बई के कावस जी जहांगीर हाल में, पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में 30 सितम्बर 1932 को एक सभा हुई, जिसमें हिन्दूओं ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। सभा का उद्देश्य था अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोधी संध (आल इंडिया अंटी–अंटचेबुलिटी लीग) की स्थापना करना, तथा उसकी शाखाएं विभिन्न प्रांतों और केंद्रों में खोलना। दिल्ली में उस लीग का मुख्यालय बनने वाला था। श्री घनश्याम दास बिड़ला उसके अध्यक्ष और अमृतलाल ठक्कर उसके महामंत्री बनने वाले थे। आल इंडिया एंटी अनटचेबिलिटी लीग की स्थापना करना श्री गांधी की योजना थी। उस लींग को श्री गांधी से प्रोत्साहन मिला था और यह पूना पैक्ट का परिणाम था। उत्पत्ति काल से लीग यह लीग एक प्रकार से श्री गांधी का धर्मपुत्र था। श्री गांधी ने पहला काम यह किया कि उसका नाम बदल दिया। एक प्रेस विज्ञप्ति, जो 9 दिसम्बर 1932 को प्रसारित हुई थी, जिसमें गांधी ने जनता से कहा था कि यह संस्था अब से ''सर्वेंट्स आफ दि अंटचेबुल्स सोसाइटी'' के नाम से जानी जाएगी। यह नाम गांधीजी को पंसद नही था और वह दूसरे के नाम की तलाश में थे। अंत में उन्होंने उसका नया नामकरण किया '' हरिजन सेवक संघ'' – जिसका अर्थ था, उन लोगों की संस्था, जो अस्पृश्यों की सेवा में लगे हों। यह श्री गांधी द्वारा दिया हुआ नाम था, जिसे वह अस्पृश्यों के लिए प्रयोग करते थें। इससे शैवों और वैष्णवों के बीच विवाद खड़ा हो गया। विष्णु के सौ नामों में से ''हरि'' एक नाम है, जबकि ''हर'' शिव के सौ नामों में से एक है। ''हरिजन'' नाम चुनने में श्री गांधी को किसी एक पंथ का पक्षपाती होने का दोषी ठहराया गया। शैवों का विचार था कि अछूतों को ''हरजन'' कहा जाए, जिसे श्री गांधी ने स्वीकार नहीं किया और उस नई संस्था का नाम ''हरिजन'' पर रखा गया।

श्री बिड़ला और ठक्कर ने 3 नवंबर 1932 को एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की जिसमें उन्होंने उस संस्था का कार्यक्रम बनाया और यह भी बताया कि संस्था उस कार्यक्रम को कैसे कार्यान्वित करेगी।

कार्यक्रम के बारे मे विज्ञप्ति में कहा गया :

''संस्था का विश्वास है कि सनातनी हिंदुओं में सूझबूझ वाले लोग अस्पृश्यता निवारण के उतना विरूद्ध नहीं है, जितना कि अंतर्जातीय भोज और अंतर्जातीय विवाह के। चूंकि संस्था की यह आकांक्षा नहीं है कि अपनी सीमा से बाहर के सुधारों को हाथ में ले, यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि संस्था सवर्ण हिंदुओं में अस्पृश्ता के चिन्हों को समझा बुझा कर समाप्त करने का कार्य करेगी, उसका मुख्य कार्य रचनात्मक होगा; जैसे शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र में दलित वर्गों का उत्थान, जिससे अस्पृश्यता निवारण को बहुत क्षेत्र में दलित वर्गों के उत्थान, जिससे अस्पृश्यता निवारण को बहुत बल मिलेगा। ऐसे कार्य से कट्टरपंथी सनातनी हिंदू भी विरोध करने के बजाय सहानुभूति दिखांएगे और मुख्यतया इस संस्था का निर्माण इसीलिए किया गया है। समाजिक सुधार जैसे जाति व्यवस्था को समाप्त करना और अंतर्जातीय सहभोज इस संस्था की परिधि से बाहर रखे गए है।''

योजना को सहजता से चलने के लिए यह प्रस्ताव रखा गया कि प्रत्येक प्रांत इकाइयों में विभाजित कर दिया जाए और प्रत्येक इकाई का वेतनभोगी उसका प्रभारी हो। जरूरी नहीं कि एक जिले मे एक इकाई हो, वह इकाई दो जिलों अथवा दो राज्यों को भी मिलाकर बनाई जा सकती है। एक वर्ष के लिए एक साधारण बजट का मसविदा भी बनाया गया। वह बजट निम्न प्रकार होगा –

''पूरे खर्च का कम से कम तिहाई धन उनके वास्तविक कल्याण कार्यों पर व्यय होना चाहिए और शेष एक तिहाई धन कर्मचारियों और उनके भत्तों पर व्यय होना चाहिए। इसके लिए न्यूनतम दो वेतनभोगी कार्यकर्ता होंगे, उन्हें महीने में 15 से 29 दिन तक गांवो में भ्रमण करना होगा।

दो भ्रमणशील कार्यकर्ताओं का रखरखाव एवं भत्ता –	30+20=50X12 = 600
दो भ्रमणशील कार्यकर्ताओ का यात्रा भत्ता–	2X10X12 = 240
कार्यकर्ताओं का विविध खर्च –	2X10X12 =240
कल्याणकार्य अर्थात, स्कूली पुस्तकों का मूल्य छात्रवृत्ति, पुरस्कार, कुओं के लिए अनुदान और हरिजन पंचायतों का निर्माण	= 2000
योग	3080

पूरे देश का बजट

हम यहां पूरे देश के लिए मोटे तौर से न्यूनतम वार्षिक राशि का विवरण दे रहे हैं। उस महान कार्य के विचार से योजना बहुत किफायती थी और इस विशाल कार्य के लिए धन एकत्र करने में जनता को कोई कठिनाई नहीं होती। उस कार्य के लिए दी गई पाई–पाई मूल्यवान थी, इसलिए हम चंदे के रूप में योगदान करने की अपील जनता से करते है। प्रत्येक प्रांत के लिए इकाइयों की प्रस्तावित संख्या केवल अस्थाई प्रस्ताव है। वास्तव में अंतिम निर्णय प्रांतीय बोर्डों द्वारा अपने आप लेना होगा।

''यह हिसाब लगाया है कि फिलहाल इकाइयों की निम्नलिखित संख्या विभिन्न प्रांतों में कार्य करने के लिए आवश्यक होगी। जिलों और राज्यों में इकाइयों की संख्या प्रत्येक प्रांत में निम्न प्रकार थी।

प्रांत का नाम	जिलों की संख्या	इकाइयों की संख्या
असम	11	6
आंध्र	–	6
बंगाल	26	15
कलकत्ता	1	3
बिहार	16	16
बम्बई नगर एवं 1 उपनगरीय जिला	3	
महाराष्ट्र	10	8
गुजराज, बड़ौदा, काठियावाड़, कच्छ और दूसरे राज्य 5 और राज्य 10		
मध्यप्रांत एवं बरार (मराठी)	9	7
मध्य भारत के राज्य	11	8
दिल्ली प्रांत	1	2
काश्मीर	1	1
मालाबार, कोचीन एवं त्रावनकोर मैसूर, कर्नाटक, बम्बई के जिले और मद्रास	8	10
निजाम का राज्य	14	10
उडीसा जागीरदारी राज्य 5+26= स्टेट्स		
पंजाब एवं उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांत तथा पंजाब राज्य (स्टेटस)	32+7=39	10
राजपूताना रजवाड़े अजमेर–मारवाड़ राज्य		
ब्रिटिश शासित खंड –	18+1=19	9
सिंध	8	5
तमिलनाडु	13	8
संयुक्त प्रांत	48	24
योग		184

184 इकाइयों का खर्च होगा–	3000 X184 = 5,52,000 रूपये
केन्द्रीय एवं प्रांतीय कार्यालय	
केन्द्रीय कार्यालय–	1000 X12 = 12,000
प्रांतीय कार्यालय –	4000 X 12 = 48,000
संपूर्ण योग	6,12,000 रूपये

इस धनराशि को केंद्रीय कोष से तथा प्रांतो और जिलों से एकत्र करना होगा। यह देखा जा सकता है कि 6 लाख रूपसे एकत्र करने का इरादा किया गया था और इसे देश में अस्पृश्यता निवारण के लिए तथा हरिजनों के उत्थान पर खर्च करना था। यह उत्थान का कार्यक्रम कम से कम पांच वर्ष तक अवश्य चलना चाहिए। देसी राज्यों को मिला कर इस योजना का प्रसार जब 22 प्रांतो में फैल गया तो करोड़ अथवा चार सौ लाख हरिजनों के लिए यह धनराशि वास्तव में कम थी।

हरिजन सेवक संघ का कार्य करने के लिए धन जुटाने को श्री गांधी ने 7 नवंबर, 1933 से 29 जुलाई 1934 के मध्य देशभर देशभर की यात्रा की और आठ लाख रूपये, इकट्ठे किए। जैसा कि यात्रा का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यों के हित में सवर्ण हिंदुओं के अंदर उत्साह पैदा करना था और धन भी एकत्र करना था, श्री गांधी ने अधिकतर यात्रा पैदल चल कर की । श्री गांधी ने आठ लाख रूपये एकत्र किए उपरोक्त धनराशि तथा श्री गांधी के धनी मित्रों द्वारा दानस्वरूप, जो धन एकत्र हुआ, उसमें हरिजन सेवक संघ ने अपना काम आरंभ किया।

हरिजन सेवक संघ सितम्बर 1932 से चल रहा है। अस्पृश्यों की दुर्दशा पर तथा उनके उत्थान के लिए श्री गांधी कितने चिन्तित हैं, और उनकी आत्मा में जो व्यवस्था है उसका यह संघ शानदार साक्षी है। संघ के महामंत्री ने दिल्ली में संघ के भवन में बहुत से अमरीकी लोगों को आमंत्रित किया और उन्हें दिखाया कि श्री गांधी द्वारा अस्पृश्यों के कल्याण के लिए कितना अनूठा कार्य किया जा रहा है।

सभी को पददलित लोगों के कल्याण के लिए जा रहे कार्यो की प्रशंसा करनी चाहिए। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी कभी आलोचना न की जाए। यह जांच करना उचित ही होगा कि जब से संघ बना है तब से वह क्या कार्य कर रहा है। जिस किसी ने भी संघ की वार्षिक रिपोर्ट का अवलोकन किया है, वह देखेगा कि वही घिसीपिटी बातें दोहराई जा रही है। शिक्षा के क्षेत्र में, संघ ने अस्पृश्यों के लिए कला, प्राविधिक तथा व्यवसायिक पाठ्यक्रमों के लिए छात्रवृत्तियां आरम्भ करके उनकी सहायता कर उनमें उच्च शिक्षा को बढ़ावा दिया है। संघ हाई स्कूल तक के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां भी देता है। संघ उन अस्पृश्य विद्यार्थियों के लिए, जो कालेजों और हाई स्कूलों में पढ़ाते हैं, छात्रावास का प्रबंध करता है। जहां आस–पास में सामान्य स्कूल नहीं थे अथवा जहां उनके लिए सामान्य स्कूल बंद थे, वहां प्राथमिक स्तर पर बच्चों के लिए पृथक स्कूल कायम करना संघ का मुख्य शैक्षिक कार्यकलाप है।

संघ का दूसरा कार्य कल्याणकारी गतिविधियां थी। संघ का अस्पृश्यों को चिकित्सा सहायता पहुंचाने का कार्य इसी शीर्षक के अन्तर्गत आता है। संघ के वे भ्रमण करने वाले कर्मचारी हरिजनों के घरों में बीमारों और आपदाओं में फंसे लोगों को चिकित्सा सहायता पहुंचाने जाते है। अस्पृश्यों के उपयोग हेतु संघ की ओर कुछ औषधालयों का प्रबंध किया जाता है। यह संघ का लघुतर

कार्य है।

संघ का अधिक महत्वपूर्ण कार्य हरिजनों के लिए पेय सप्लाई करना है। वह यह कार्य (1) नए कुएं खुदवाकर अथवा नलकूप और पंप लगवाकर (2) पुराने कुओ, नलकूपों, पंपों की मरम्मत करा कर और (3) स्थानीय निकायों को नए कुएं खुदवाने के लिए प्रोत्साहन देकर करता है।

संघ ने तीसरा काम आर्थिक क्षेत्र में किया। संघ ने कुछ औद्योगिक स्कूल चलाए हैं और यह दावा किया जाता है कि संघ द्वारा संचालित स्कूलों से कुछ संख्या में प्रशिक्षित कारीगर निकले जो स्वत्रंत रूप से अपना जीविकोपार्जन कर सकते है। परंतु रिपोर्टों के अनुसार अधिक सफल और महत्वपूर्ण कार्य अस्पृश्यों में सहकारी समितियां स्थापित करके किया गया है।

II

संघ की गतिविधियां के इस संक्षिप्त विवरण से दिमाग में यह बात आती है कि संघ अस्पृश्यों के कल्याण के लिए बड़ी धनराशि खर्च कर रहा है। परंतु वास्तविकता क्या है? यह स्मरण होगा कि अपेक्षा की जाती थी, लेकिन संघ ने वास्तव में कितना खर्च किया? उस के सचिव ने मई 1941 की अपनी रिपोर्ट में बताया कि –

''आठ वर्षों से संघ ने हरिजनो के लिए अपनी विभिन्न शाखाओं और केंद्रीय कार्यालय के माध्यम से क्रमशः लगभग 24,25,700 रूपये तथा 3,41,607 रूपये खर्च किये। समस्या की आवश्यकताओं को देखते हुए यह 27,67,307 रूपये की धनराशि अपर्याप्त है।''

इस आधार पर संघ का वार्षिक व्यय 3,45,888 रूपये आता हैं, जो संघ की अपेंक्षित धनराशि से 50 प्रतिशत कम था। इससे स्पष्ट है कि संघ उतना बड़ा कार्य नहीं कर रहा है। पांच करोड़ अस्पृश्यों की आबादी पर तीन लाख रूपये का वार्षिक बजट उतना नहीं है, जितने से अछूतों की आवश्यकताएं पूरी की जा सके। इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस के शासन होने के बावजूद दो वर्षों में संघ को यथोचित अनुदान सरकार की ओर से न मिल सका।

संघ को उसकी दयनीय आर्थिक स्थिति के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। सारा दोष हिंदुओं का है। यदि संघ की हासोन्मुख न होकर जैसी की तैसी स्थिति भी रही हो तो यह स्पष्ट है कि हिन्दुओं में अस्पृश्यों के कल्याण के प्रति कितनी उपेक्षा है। राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने एक करोड़ रूपये चंदा एकत्र किया, जो तिलक स्वराज्य कोष में गया। सामान्य हितों के लिए अभी उन्होंने जल्दी ही एक करोड़ पन्द्रह लाख रूपये चन्दें के रूप में एकत्र किए, जिससे कस्तूरबा स्मारक कोष बना। इसकी तुलना में हिंदुओं ने हरिजन सेवक संघ के लिए जो चंदा एकत्र किया वह धनराशि नगण्य है।

अस्पृश्यों के कल्याण के लिए संघ जिस ढंग से काम करता है, उससे किसी को मतभेद हो सकता है। संघ अधिकतर जो कार्य करता है, वह ऐसा कार्य है, जिसे किसी भी सुसभ्य सरकार को सरकारी साधनों से करना चाहिए। यह पूछा जा सकता है कि संघ सरकार से इस कार्य को अपने हाथ में लेने के लिए क्यों नहीं कहता और उन योजनाओं पर क्यों नहीं खर्च करता, जिन्हें शीघ्रता से निपटाने की आवश्यता है?

यद्यपि इससे अस्पृश्यों में संघ के प्रति वैमनस्य की भावनाएं नहीं उठ सकतीं? तब भी यह माना जा सकता है कि वैमनस्य की भावना मौजूद है। इन परिस्थितियों एवं कारणों पर एक लेखक ने 14 अक्टूबर 1944 को इंडियन सोशल रिफार्मर में लिखा था –

'' अनुसूचित जातियों का एक प्रतिनिधिमंडल सेवग्राम में श्री गांधी के पास यह निवेदन करने गया कि हरिजन सेवक संघ प्रबंधक मंडल में अनुसूचित जाति के सदस्यों को भी प्रतिनिधित्व दिया जाए। ऐसी सूचना मिली है कि श्री गांधी ने उन्हें उत्तर दिया कि संघ हरिजनों की सहायता के लिए है। वह हरिजन संस्था नहीं है, अतः उनका अनुरोध मान्य नहीं है। गोलमेज सम्मेलन में श्री गांधी ने हरिजनों के लिए सीट आरक्षण का इस आधार पर विरोध किया था कि वे हिंदू है और उन्हें सामान्य हिंदुओं से अलग न किया जाए। इसके पश्चात यर्वदा पैक्ट में उन्होंने सीटों के बटवारे में हिंदू कोटे से सीटें देने पर विचार किया। जब इस संबंध में मसौदा तैयार होकर बम्बई की आम सभा में पुष्टि हेतु लाया गया, तब उस बैठक के अध्यक्ष पंडित मदनमोहन मालवीय थे, उस सभा में से एक दर्शक ने कहा कि कोई आवश्यकता नहीं है इसके लिए अधिक धन खर्च किया जाए, जैसा कि पंडित जी की राय है। हिंदू समाज का कलंक मिटाने के लिए धन एकत्र किया जाए इसकी क्या आवश्यकता है? जितने भी लोग यहां पर उपस्थित हैं, यदि प्रत्येक नर–नारी निश्चिय कर ले (उपस्थित महिलाओं की संख्या काफी थीं) कि वे सामान्य हिंदुओं की भांति हरिजनों को भी अपने घर पर आदर का स्थान देंगे, तो यह समस्या हो जाएगी। बम्बई के एक रईस व्यापारी ने घुसपैठिये को यह कह कर चुप कर दिया कि 'तुमने उनसे भीतरी बात कही है, उनमें से कोई भी उस सत्य को अंगीकार करने के लिए तैयार नहीं है।' पहली बात से मुझे ज्ञात होता है कि यह हरिजन सेवक संघ की मूलभूत कमजोरी रही है। परिणाम क्या हुआ? संघ का प्रत्येक लाभार्थी डा. अम्बेडकर का कट्टर अनुयायी है, जो इस बात का परिचायक है कि हिंदुओं के प्रति डा. अम्बेडकर की तरह उनका मन भी घृणा से भरा हुआ है। इस बयान की पुष्टि में मै कई उदाहरण दे सकता हूं, परंतु उससे बात बिगड़ेगी। मैं समझता हूं कि समस्त महत्वपूर्ण निकायों में चाहे वे स्थानीय हों अथवा केंद्रीय, हरिजन पुरूषों और महिलाओं को अन्य हिन्दुओं के साथ मिलने से उस घृणा भाव से बचा जा सकता है। हरिजनों से घुले–मिले बिना उनकी सहायता करने का विचार सामाजिक सुधार की भावना के विपरीत है। हरिजनों के उत्थान से संबंधित पहले के आंदोलनों से मैं सम्बद्ध था। मैंने उन पुरूषों और महिलाओं में कभी शत्रु भाव अनुभव नहीं किया। ऐसा इसलिए कि आंदोलन को खड़ा करने वाले धार्मिक विश्वास सामाजिक अभिशाप को दूर करने के लिए कटिबद्ध थे और दलित वर्गों के साथ उनका व्यवहार भेदभावपूर्ण नहीं था। मैं समझता हूं कि श्री गांधी का यह कथन ठीक नहीं था कि अनुसूचित जातियों के लोग हरिजन सेवक संघ में नही शामिल किए जा सकते। एक मित्र ने मुझे बताया था कि जब संघ बना था, डा. अम्बेडकर उसके एक सदस्य थे।''

मैने यह उद्धरण इसलिए प्रस्तुत किया है कि इससे मुझे संघ के क्षोभ के कारणों तथा उसके वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने का अवसर मिलता है।

III

''इंडियन सोशल रिफार्मर'' में लेखक ने दलील दी कि अस्पृश्यों को संघ के प्रबंध में शामिल किया जाना चाहिए। उनके बयान से शायद लोगों को विश्वास हो जाए कि अस्पृश्यों को संघ के केंद्रीय बोर्ड में कभी भी प्रतिनिधित्व नहीं मिला। ऐसा सोचना भूल होगी। वास्तविक स्थिति यह है कि आरंभ में संघ के केंद्रीय बोर्ड में कुछ प्रमुख अस्पृश्य प्रतिनिधि थे। श्री बिडला और श्री ठक्कर ने 3 नवंबर 1932 को , जो बयान जारी किया उससे जो केंद्रीय बोर्ड के सदस्यों ने उनके नाम दिए हुए हैं, उस केंद्रीय बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य हैं –

'' सार्जेंट श्री घनश्याम दास बिड़ला, दिल्ली और कलकत्ता, सर पुरूषोत्तम दास ठाकुर दास, बम्बई, सर लल्लू भाई सामलदास, बम्बई, डा. बी. आर. अम्बेडकर, बम्बई , सेठ अम्बालाल साराभाई, अहमदाबाद, डा. बी. सी. राय, कलकत्ता, लाला श्रीराम, दिल्ली, राव बहादुर एम.सी. राजा, मद्रास, डा. टी. एस.एस. राजन त्रिचनापल्ली, राव बहादुर श्री निवासन, मद्रास, श्री ए.वी. ठक्कर, महामंत्री, दिल्ली।''

यह स्पष्ट है कि आठ सदस्यों में से तीन सदस्य अस्पृश्यों में से लिए गए थे। मेरे बोर्ड से हटने पर अन्य दो सदस्य, राय बहादुर एम.सी. राजा तथा राय बहादुर श्रीनिवास भी उससे अलग हो गए। संघ से उनके अलग होने का क्या कारण था, मुझे मालूम नहीं।

मैंने संघ से सम्बंध क्यों तोंड़े, इसका कारण स्पष्ट कर देना उचित होगा। पूना पैक्ट के बाद मैने 'भूलो और क्षमा करो' की भावना अपनाई। मैंने बहुत से मित्रों के कहने पर श्री गांधी की सदस्यता स्वीकार कर ली । उसी भावना में मैंने संघ के केंद्रीय बोर्ड की सदस्यता स्वीकार की थी। मैं इसके जरिए कुछ करना चाहता था। वास्तव में, मैं श्री गांधी से संघ की उस योजना के विषय में चर्चा करना चाहता था। चर्चा करने से पहले तीसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन से मेरा बुलावा आ गया। मैं इतना ही कर सकता था कि मैं संघ के महामंत्री श्री ए.वी. ठक्कर को अपने विचार लिख कर भेज दूं। तदनुसार मैने स्टीमर पर से उन्हें निम्नलिखित पत्र लिखा –

''एन.एन. विक्टोरिया पोर्टसईद
नवंबर 14,1933

प्रिय श्री ठक्कर,

लंदन की यात्रा आरंभ करने से पहले मुझे आपका तार मिला, जिसमें केंद्रीय बोर्ड के लिए राय बहादुर श्रीनिवासन तथा बम्बई प्रांतीय बोर्ड के लिए श्री डी.बी नाइक के नामजद करने की मेरी सलाह स्वीकार कर ली गई है। मैं इस बात से भी प्रसन्न हूं कि इस प्रश्न को शांतिपूर्वक हल कर लिया गया और अब हम एंटी अनटचेबिलिटी ली' की योजना को मिलजुल कर चला सकते है। मैं सेंट्रल बोर्ड के सदस्यों से मिल कर, उनसे उन सिद्धांतों पर चर्चा करना चाहता था, जो लीग की योजना बनाने से सम्बद्ध हैं, परंतु दुर्भाग्यवश अल्प सूचना पर लंदन के लिए रवाना होने के कारण मुझे वह अवसर गंवाना पड़ रहा हैं तथापि मैं दूसरा सर्वोत्तम विकल्प लिखित रूप में अपने विचार से भेज रहा हूं। इस अनुरोध के साथ कि आप इन विचारों को केंद्रीय बोर्ड के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करेंगे।

मेरे विचार से दलित वर्गों के उत्थान के लिए दो विभिन्न पद्धतियां हो सकती हैं। एक वर्ग ऐसा है जो यह सोचता है कि दलित वर्ग के सदस्यों की स्थिति उनके व्यक्तिगत आचरण पर निर्भर करती है। यदि वे कंगाली और मुसीबतों में फंसे है, तो इसका कारण यहीं है कि वे स्वंय ही दुष्ट और पापी हैं साामाजिक कार्यकर्ताओं का यह वर्ग,योजना को हाथ में लेते हुए, उन सभी प्रयत्नों और साधनों अपना ध्यान केंद्रित करता है जो इस योजना की सफलता में आवश्यक है; जैसे इस में संयम, व्यायाम, सहयोग, पुस्तकालय, पाठशालांए इत्यादि शामिल की जा सकती है, जो किसी व्यक्ति के उत्थान के लिए आवश्यक है। मेरे विचार से इस समस्या से निपटने का एक और भी तरीका है। वह तरीका इस भावना से पैदा होता है कि कोई मनुष्य जिस प्रकार की परिस्थितियों और वातावरण में रहता है, उसी पर उसका भाग्य निर्भर करता है। यदि कोई मनुष्य गरीबी और मुसीबत से सदैव पीड़ित रहता है, तो उसका कारण यही है कि वातावरण उसके लिए अनुकूल और हितकर नहीं है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं कि दूसरा विचार अधिक सहीं है, पहला विचार कुछ लोगों का स्तर उठाने में सहायक हो सकता है, परंतु पूरा वर्ग इससे ऊंचा नहीं उठ सकता। एंटी अनटचेबिलिटी लीग के उद्देश्य के संबंध में मेरा विचार यह है कि इससे दलित वर्ग के केवल कुछ ही चुने हुए बच्चों को उन्नति करने में सहायता न मिले बल्कि पूरे वर्ग का स्तर उठाने में वह विचार सहायक सिद्ध हो। अतः मैं नहीं चाहता कि लीग केवल स्वयं की योजना को कार्यन्वित करने में अपनी शक्ति व्यर्थ में बरबाद करें। मैं चाहता हूं कि बोर्ड अपनी सारी शक्तियों को ऐसी योजना पर केंद्रित करे, जिससे दलित वर्ग के लोगों को स्वच्छ सामाजिक वातावरण मिल सके। अपने विचारों को सामान्य ढंग से रखते हुए लीग की योजना के लिए मैं कुछ ठोस प्रस्ताव पेश करता हूं –

1. नागरिक अधिकारों को प्राप्त करने का आंदोलन

मेरे विचार से लीग का पहला काम यह होना चाहिए कि दलित वर्गों को गांवो के सामान्य कुओं से पानी भरने, ग्रामीण स्कूलों में उनकें बच्चों को पढ़ाने, सार्वजनिक यातायात के साधनों का उपयोग करने, जैसे नागरिक अधिकारों की सुविधा के लिए पूरे देश में आंदोलन छोड़ा जाए। गांवों में ऐसा कार्यक्रम चलाने से हिंदू समाज में वाछिंत सामाजिक क्रांति आएगी। बिना ऐसे आंदोलनों के दलितों को समाज की बराबरी के अवसर नहीं मिल सकते। बोर्ड पता लगाए कि नागरिक अधिकरों के आंदोलन में क्या कठिनाइयां आ सकती हैं? मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि मैंने दलित वर्ग संस्थान और सोशल इक्वेलिटी लीग का अध्यक्ष होने के नाते देखा है कि बम्बई प्रेसीडेंस के कोलाबा और नासिक जिलों में जो योजना चलाई थी उसमें क्या हुआ था? सबसे पहले तो दलित वर्गों और सवर्ण हिंदुओं के बीच दंगे, फसाद होते हैं, जिसमें दोनों तरफ के लोगों के सिर फूटते है और फौजदारी के मुकदमें चलते हैं। इस लड़ाई में दलित वर्ग के लोगों को बहुत नुकसान होता है, क्योंकि पुलिस तथा मजिस्ट्रेट दलित वर्गों के बचाव में आगे आए

हो। चाहे वे न्याय के मार्ग पर ही क्यों न हों? पुलिस और मजिस्ट्रेट जितना भ्रष्ट हो सकते हैं, उतने भ्रष्ट हैं परंतु इससे भी बुरी बात यह है कि वे इस अर्थ में राजनीति से प्रेरित हैं कि वे यह नहीं देख सकते कि इन्हें न्याय मिले। वे तो चाहते हैं कि दलित वर्गों के मुकाबले सवर्ण हिंदुओं का वर्चस्व और उनका हित सुरक्षित रहे। दूसरे, गांवों के लोग दलित वर्गों का पूर्णयता बहिष्कार करते हैं जब उन्हें यह आभास हो जाता है कि दलित वर्ग के लोग उनकी बराबरी पर आने का प्रयत्न कर रहे हैं। आप उनकी परेशानी, भुखमरी और बेरोजगारी की दर्दनाक कहानियां जानते है? उन्होंने ये कहानियां स्टार्ट्रे समिति के समक्ष दोहराई थी जिसके आप भी सदस्य थे। इसलिए मैं इस उपाय के प्रभाव के विषय में और कुछ नहीं कर सकता। न ही इस विषय मे इससे अधिक कहने की गुंजाइश है कि दलित वर्गों को उनकी विकट अवस्था से ऊंचे उठाने के लिए प्रयत्न किए जाएंगे।

मैंने दलित वर्गों के उत्थान के मार्ग में आड़े आने वाली बहुत सी कठिनाइयों में से केवल दो का उल्लेख किया है, जिन पर लीग को काबू पाना है। यदि नागरिक अधिकारों के इस अभियान में लीग को सफलता प्राप्त करनी हैं, तो देहाती क्षेत्रों में कार्य करने वाले स्वयंसेवक दल तैयार करने होंगे, जो दलित वर्ग के लोगों को अपने अधिकारों के लिए प्रोत्साहित करेंगे और कानूनी दाव–पेंचों में सफलतापूर्वक उनकी सहायता करेंगे, तब मैं लीग के इस कार्यक्रम को प्रभावकारी समझूंगा और मुझे यह कहने में जरा सी भी हिचक न होगी कि लीग दूसरी समस्याओं की अपेक्षा उन्हें प्राथमिकता देती हैं यह सच है कि इस कार्यक्रम से सामाजिक उथल–पुथल और खून–खराबा भी हो सकता है। परन्तु इससे बचा नहीं जा सकता। मैं, न्यूनतम विरोध करने की वैकल्पिक नीति को भी जानता हूं। मुझे विश्वास है कि यह अस्पृश्यता को जड़ से समाप्त करने के मामले में प्रभावी नहीं होगी। अधिकतर नासमझ सवर्ण हिंदूओं में, जो प्राचीनकाल से अविवेकपूर्ण विचार चले आ रहे है, उनके कारण वे उन दलित वर्गों के उत्थान का कार्य नहीं कर सकते। सबसे पहली बात है सवर्ण हिंदू मानव स्वभाव के अनूकूल दलित वर्गों के साथ परंपरागत अस्पृश्यता का मान कर चलता हैं। प्रायः लोग अपने पुराने रीतिरिवाजों के अनुसार व्यवहार करना नहीं छोड़तें, क्योकि कुछ लोग उन रीतियों को छोड़ने के विरूद्ध प्रचार करते है। परंतु पुराने रीतिरिवाजों के अनुसार बर्ताव करने को धार्मिक स्वीकृति मिली हुई है। यदि उसे गलत करार नहीं दिया जाता अथवा उसे नहीं रोका जाता, तो लोगों के मस्तिष्क पर कोई अच्छा प्रभाव डाले बिना सब किए–कराए पर पानी फिर जाता है। उन आपदाओं से दलित वर्गों को तभी मुक्ति मिल सकती है, जब सवर्ण हिंदुओं को समझाया जाएगा और उन्हें यह अनुभव करने के लिए विवश किया जाएगा कि वे अपने पुराने तौर–तरीके बदलें। उन सवर्ण हिंदुओं में पुराने समय से प्रचलित रीति–रिवाजों की जो प्रथा है, उसके विरूद्ध आपको सीधी कार्यवाही करके आंदोलन चलाना है। उस आंदोलन के बाद उन्हें सोचना होगा और वे अगर सोचेंगे तो इससे उनमें परिवर्तन आएगा। इस शांत परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य यही है कि यह बौद्धिकता के दबाव में नहीं होगा। उसके बाद आंदोलन में आगे नहीं बढ़ेगा। महाद में चावदार, तालाब, नासिक के काला राम मंदिर और बालाबार के गुरूवयूर मंदिर प्रवेश के संबंध में, जो सीधी कार्यवाही की गई उससे कुछ ही दिनों में जो परिणाम निकला, वह परिणाम उपदेशात्मक रीति से लाखों दिनों में नहीं निकल सकता था। इसलिए मैं जोरदार शब्दों में ऐसा आंदोलन छेड़ने का सुझाव देता हूं कि सीधी कार्यवाही कर अस्पृश्यता निवारण लीग दलित वर्ग के लोगों को नागरिक अधिकार दिला सकती है। मुझे इस आंदोलन की कठिनाइयों का भी अहसास है और अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूं कि शांति और व्यवस्था को कायम रखने वाले अधिकारी भी हमारे पक्ष में होंगे। इसी वजह से मैंने उस योजना से जान–बूझकर मंदिर प्रवेश की बात को निकाल दिया है और इसे केवल नागरिक अधिकारों की प्राप्ति तक ही सीमित रखा है। इसे कार्यान्वित करने में शासन भी प्रोत्साहन देगा।

2. अवसर की समानता

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि लीग को दलित वर्गों को समान अवसर प्राप्त करने का कार्य अपने हाथ में ले लेना चाहिए। दलित वर्गों की गरीबी और बदहाली का मुख्य कारण अस्पृश्यता के कारण उन्हें समान अवसरों से वंचित रखना है। मुझे विश्वास है कि आप इस बात से भली भांति अवगत हैं कि दलित वर्ग के लोग अन्य लोगों की तरह गांवो में तथा शहरों में सब्जियां, दूध, धी बेच कर अपनी जीविका नहीं कमा सकते। सवर्ण हिंदू उन वस्तुओं को एक गैर–हिंदू से तो खरीद सकता है, परन्तु दलित वर्ग से नहीं। नौकरियों के क्षेत्र में उसकी दशा और भी खराब है। सरकारी विभागों में भेदभाव का भूत मौजूद है। दलितों को पुलिस में सिपाही अथवा संदेशवाहक तक नहीं बनाया जाता। करखानों में भी वही हाल है। अमरीका की तरह खुशहाली के दिनों में नीग्रों को सबसे अंत में नौकरी मिलेगी और मुसीबत के दिनों में सबसे पहला शिकार वही होगा। यदि वह कही कदम जमा कर खड़ा भी हो जाए, तो उसका भविष्य बहुत बुरा होगा। बम्बई और अहमदाबाद की सूती मिलों में उसे न्यूनतम मजदूरी ही उपलब्ध है जहां वह केवल 25 रूपये मासिक कमा सकता है बुनाई के दरवाजे जैसे अधिक आय वाले विभाग उनके लिए हमेशा बंद रहते है। अल्प वेतन विभाग से उनके लिए हमेंशा बंद रहते है। अल्प वेतन विभाग से भी वह तरक्की की सीढ़ी नहीं चढ़ सकता। अधिकारियों के स्थान सवर्ण हिंदुओं के लिए सुरक्षित रहते हैं, जबकि दलित वर्ग के कर्मचारी कुत्तों की तरह दुम हिलाने वाले गुलाम होते हैं, चाहे वे कितने पुराने और कुशल क्यों न हों? उन विभागों में जहां काम के आधार पर पैसा मिलता है, उसके साथ सामाजिक भेदभाव ज्यों का त्यों है। उसे सवर्ण हिंदुओं के मुकाबले ठेकेदारी के काम से वंचित रखा जाता है। अटेरन विभाग में काम करने वाली दलित वर्गों की औरते सैकड़ों की संख्या में शिकायत लेकर मेरे पास आई। उन्होंने बताया कि वहां की नायक कच्चे माल को समस्त मजदूरों में समान रूप से बाटने की अपेक्षा सवर्ण हिंदू औरतों को ही अधिक काम देती है और उन्हें काम से प्रायः वंचित कर दिया जाता है। सवर्ण हिंदुओं के केवल कुछ ही उदाहरण मैने आपके सामने रखे है। इसलिए मैं यह उचित समझता हूं ऐसी असमानता की सार्वजनिक रूप से निंदा की जाए। अस्पृश्यता निवारण के इस प्रश्न को इसी नीयत से अपने हाथ में लिया जाय। इसके लिए संस्थाएं बनाई जाएं, तो और अधिक अच्छा होगा। मैं तो यही चाहूंगा कि सूती मिलों के बुनाई विभागों में दलित वर्गों को शामिल करने का अवसर दिया जाए। हिंदुओं द्वारा संचालित प्राइवेट फर्म और कंपनियों में, उनके दफ्तरों में विभिन्न श्रेणियों के पदों के लिए, जहां दलित वर्ग के योग्य अभ्यर्थी उपलब्ध हों, तो उन्हें नौकरी दिला कर बहुत कुछ किया जा सकता है।

3. सामाजिक मेलजोल

अतः मैं कहना चाहता हूं कि हिंदुओं के मन में दलितों के प्रति जो द्वेष भाव की मनोवृत्ति घर कर गई है, उसे दूर किया जाए। यही उनके बीच अलगाव का मुख्य कारण है। मेरे विचार से सबसे अच्छा तरीका तो यही है कि दोनों में नजदीकी रिश्ता कायम किया जाए। दोनों वर्गों में आपसी मेल–जोल से ही ऐसी भ्रमपूर्ण भावनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है। मेरे विचार से सवर्ण हिंदुओं के घरों में दलितों को मेहमानों अथवा नौकरों के रूप में प्रवेश दिलाने से अधिक प्रभावकारी उपाय और कोई नहीं हो सकता । इस प्रकार का पारस्परिक मेल–जोल उन दोनों वर्ग को नजदीक लाएगा और हमारी उस एकता का मार्ग प्रशस्त होगा, जिसके लिए हम सभी प्रयत्नशील हैं। मुझे अफसोस है कि बहुत से सवर्ण हिंदू जो अपने को बड़ा उत्तरदायी होने का दिखावा करते है, इसके लिए तैयार नहीं होंगे। श्री गांधी के दस दिनों के अनशन के समय जब भारतीय समाज कांप उठा था, तब विले पारले और महाद में ऐसी कुछ बातें हुई, जहां सवर्ण हिंदू नौकरों ने अपना काम छोड़ दिया, क्योंकि उनके मालिकों ने अस्पृश्यों के साथ भाईचारे का बर्ताव कर अस्पृश्यता के पुराने नियमों को तोड़ दिया था। मुझे आशा थी कि वे मालिक उनके स्थानों पर अस्पृश्यों को नौकरी देकर हड़ताल समाप्त कर गलती करने वाले लोगों को पाठ सिखाएंगे। ऐसा करने की अपेक्षा, उन्होंने रूढ़िवादियों के सामने हथियार डाल दिए और उन्हें पहले से अधिक मजबूत कर दिया। मैं नहीं समझता कि दलित वर्गों के ऐसे अवसरवादी मित्र कहां तक उनके सहायक सिद्ध होंगे? जब लोग मुसीबत में होते हैं, तो उन्हें केवल इतना तो संतोष होता हैं कि कुछ लोग हैं, जो उनसे हमदर्दी रखते है। इसलिए मैं लीग से कह सकता हूं कि दलित वर्ग के लोग इन सवर्ण हिंदुओं का अपना हितैषी तब तक नहीं मानेंगे, जब तक यह सिद्ध न हो जाए कि वे अपने प्रियजनों की भांति अस्पृश्यों के लिए लड़ने को वैसे ही तैयार हैं, जैसे कि उत्तर के गोरों ने अपने प्रियजनों के लिए लड़ाई लड़ी। जब दक्षिणी के गोरों ने नीग्रों की मुक्ति के लिए कमरकस के लड़ाई लड़ी थी, परंतु इस बात के साथ यह भी आवश्यक है कि लीग हिंदू जनता को अछूतों और सवर्ण हिंदुओं के बीच सामाजिक सहचर्य की आवश्यकता समझाए, जैसा कि मैंने ऊपर स्पष्ट किया हैं

4. नियुक्त की जाने वाली एजेंसी

संघ को अपने कार्यक्रम का संचालन करने के लिए बड़ी संख्या में स्वयंसेवक तैयार करने होंगे। सामाजिक कार्यकर्ताओं का गठन कुछ लोगों की दृष्टि मे बहुत छोटी सी बात हो सकती है। मैं इस कार्य के लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं के संगठन के चुनाव को बहुत महत्वपूर्ण समझता हूं। सामाजिक कार्यकर्ताओं को यदि वेतन दिया जाएगा, तो वे विशेंषतया उसी काम को करेंगे, जिसके लिए उन्हें रखा जाता है। मुझे विश्वास है कि ऐसे भाड़े के कार्यकर्ताओं से लीग का उद्देश्य पूरा न होगा। जैसा कि टाल्सटाय ने कहा था ''केवल वे जो प्रेम करते हैं, वे ही सेवा कर सकते है।'' मेरे विचार से दलित वर्गों से ही लिए गए कार्यकर्ता इस कसौटी पर अधिक खरे उतरेंगे। इसलिए लीग इस प्रश्न को अपने दिमाग में रख कर निश्चय करे कि किन्हें कार्यकर्ता चुनना है? मैं यह नहीं कहता कि दलितों में बदमाश नहीं हैं, जो कुछ काम न कर पाने पर स्वार्थवश सामाजिक सेवा का धंधा अपनाते है। परंतु यह निश्चय है और आप भी देखेंगे कि दलित वर्गों के लिए गए कार्यकर्ता सफलतापूर्वक कितने प्रेम और लगन से लीग का काम करते हैं। परंतु मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि भाड़े पर कार्य कराने की ऐसी व्यवस्था से कोई अच्छा परिणाम निकलने वाला नहीं है। वास्तव में लीग को ऐसे लोगों की आवश्यकता है कि जो एकाग्रचित्त होकर के कार्य मे ऐसे व्यक्तियों और सरकारों का ही ऐसा कार्य करने के लिए चुनना पसंद करूंगा, जो समाज के हित में दिवानगी की हद तक कार्य करें। समाज का महत्वपूर्ण कार्य ऐसे व्यक्तियों को सौंपा जाए, जो मात्र दलित वर्गों की सेवा के लिए अपने आपको समर्पित करने को तैयार हों।

मुझे अफसोस है कि मैंने पत्र की सीमा का उल्लंघन किया है। मैं आगे कोई और गलती नहीं करूगां और इसे हनुमान की पूंछ की तरह और आगे नही बढ़ाऊंगा। मुझे बहुत सी और भी बातें कहनी थीं, परंतु उन्हें फिर कभी कहूंगा। पत्र समाप्त करने से पहले मुझे अभी कुछ और कहना है। बेल्फर ने कहा था कि ब्रिटिश राज्य को कानून ने नही अपितु प्रेम की डोर ने बांध कर रखा था। मैं समझता हूं कि यह बात हिंदू समाज पर भी लागू होती है। अस्पृश्यों और सवर्णों में कानून द्वारा एकता नहीं लाई जा सकती है – संयुक्त मतदान से भी नही। यदि कोई बात उनमें समरसता ला सकती हैं, तो वह है परस्पर प्रेम। मेरे विचार से पारिवारिक बंधक तोड़ कर ही ऐसा प्रेम करना संभव होगा और अस्पृश्यता निवारण लीग का कर्तव्य होना चाहिए कि वह देखे कि सवर्ण अस्पृश्यों से प्रेम करते हैं और अस्पृश्यों के साथ न्याय करते है अथवा नहीं। मेरे विचार से लीग के अस्तित्व अथवा उसकी योजना का औचित्य इसी बात में निहित है।

सादर।

आपका विश्वासपात्र
(डा. बी. आर. अम्बेडकर)

पुनश्चः

मैं इसे प्रकाशन हेतु प्रेस को भेज रहा हूं ताकि आम जनता भी मेरे विचारों से अवगत हो और उसे विचार करने का अवसर मिले।

सेवा में,

ए.बी.ठक्कर
महामंत्री
अस्पृश्यता निवारण लीग
बिड़ला हाउस, नई दिल्ली

IV

मुझे बड़ा आश्चर्य होता हैं कि मेरे प्रस्तावों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यहां तक कि मेरे पत्र की पावती भी नहीं भेजी गई । मैंने यही अनुभव किया कि संघ में मेरा बने रहना लाभप्रद नहीं हैं। मैंने अपने को संघ से अलग कर लिया। मुझे मालूम हुआ कि मेरी अनुपस्थिति में संघ के लक्ष्य और उद्देश्यों में आमूल परिवर्तन कर दिए गए। बम्बई मैं 30 सितम्बर1932 को कावसजी–जहांगीर हाल में जो बैठक हुई उसमें संस्था के उद्देश्यों को इस प्रकार बतलाया गया –

'' अस्पृश्यता के विरोध में प्रचार करना और इसके लिए जितना व्यावहारिक हो, इस शर्त के साथ आवश्यक कदम उठाना, कि कोई दबाव या जबरदस्ती नहीं की जाएगी, बल्कि केवल शांतिपूर्ण ढंग से समझाबूझा कर सभी सार्वजनिक कुएं, धर्मशालाएं, सड़के, पाठशालाएं, शमशान भूमि, शमशान घाट और सभी सार्वजनिक मंदिर दलित वर्गों के लिए खुले घोषित किए जाएंगें।''

परंतु उसके उद्घाटन के दो महीने बाद 3 नवंबर को श्री घनश्याम दास बिड़ला और श्री ए.बी. ठक्कर ने एक बयान जारी किया –

'' लीग को विश्वास है कि समझदार सनातनी हिंदू अस्पृश्यता निवारण के उतना ज्यादा विरूद्ध नहीं है, जितना कि अंतर्जातीय भोज और अंतर्जातीय विवाहों के विरूद्ध हैं। चूंकि लीग की इच्छा नहीं हैं कि लीग अपनी सीमा से बाहर जाकर सुधारों को अपने हाथों में ले इसलिए यहां पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक हो जाता है कि लीग सवर्ण हिंदुओं के बीच में जाकर अस्पृश्यता के अवशेष मिटाने की बातें उन्हें समझाएगी। उनके कार्य की रूपरेखा रचनात्मक होगी; जैसे कि दलित वर्गों का शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों मे उत्थान, जिससे अस्पृश्यता निवारण का स्वतः मार्ग खुलेगा। ऐसे कार्यों से कट्टर सनातनी हिंदू भी खींचातानी करने की अपेक्षा उनसे सहानुभूति रखेंगे। यही वह कार्य है जिसके लिए लीग की स्थापना की गई थी। जाति प्रथा की समाप्ति और अंतर्जातीय सहभोज, जैसे समाज सुधार के कार्य लीग की कार्य सीमा से बाहर रखे गए है।''

यहां संस्था के मूलभूत उद्देश्यों के पूर्णयता विपरीत कार्य किया गया था। अब भी योजना में अस्पृश्यता निवारण को नाम मात्र के लिए स्थान दिया गया था। रचनाात्मक कार्य संघ के कार्य का मुख्य अंग था। यह पूछना समीचीन होगा कि लीग के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों में इस प्रकार का परिवर्तन क्यों किया गया? संघ के लक्ष्यों और उद्देश्यों में श्री गांधी की जानकारी में लाए बिना तथा उनकी राय के बिना कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। इसका कारण यही था कि संघ का मूल भूत कार्य श्री गांधी के लिए बहुत ही असुविधाजनक था। अस्पृश्यता निवारण को मंच ही बनाए रखना बहुत अच्छा था, परंतु जहां तक कार्यक्रम को व्यवहारिक रूप देने के संबंध है, उससे हिंदुओं के बीच में श्री गांधी की भद्द पिट जाती। ऐसी अलोकप्रियता के लिए श्री गांधी तैयार नहीं थे। इसीलिए उनके लिए रचनात्मक कार्यक्रम बेकार था। हिंदुओं ने इस कार्य पर एतराज नही किया। श्री गांधी ने हिंदुओं को प्रसन्न करते हुए यह काम शुरू किया। रचनात्मक कार्य के उस कार्यक्रम से अस्पृश्यों के उस स्वतंत्र आंदोलन को पलीता लगाना था, जिस आंदोलन ने 1932 में गांधी जी को पूना पैक्ट के लिए विवश किया था। इसलिए कांग्रेसियों ने लाभ समक्षकर रचनात्मक कार्य को ही अपने हाथ में लिया। इसके फलस्वरूप कुछ अस्पृश्य कांग्रेसी हो गए। रचनात्मक कार्य की योजना का प्रयोजन अस्पृश्यों को अपने मार्ग से हटा कर श्री गांधी मार्ग पर अग्रसर करना था, वह भी बड़े सौम्य भाव से । वास्तव में यही हुआ। हरिजन सेवक संघ अस्पृश्यों के किसी ऐसे आंदोलन का बर्दास्त नहीं कर सकता था जो स्वतंत्र हो और हिंदुओं तथा कंग्रेस के विरूद्ध हो। संघ उसे नष्ट करने पर आमादा हो गयां संघ के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों में ऐसे परिवर्तन के फलस्वरूप मैंने संघ से नाता तोड़ लिया।

सबसे पहले जब कुछ अस्पृश्यों ने संघ तो श्री गांधी ने उनके स्थान पर अन्य अस्पृश्यों को नियुक्त करने का प्रयास नहीं किया। इसके बजाए संघ का संपूर्ण प्रबंध कांग्रेस से सवर्ण हिंदुओं के हाथों में सौप दिया गयां वास्तव में अब संघ की नीति यही हो गयी है कि संघ के प्रबंध और उच्चतर निर्देशन से अस्पृश्यों को दूर रखा जाए और उन्हें संघ में न लिया जाए। अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व जो श्री गांधी से संघ की प्रबंधक समिति में अस्पृश्यों को नियुक्त करने के अनुरोध के साथ मिला था, अस्वीकार कर दिया। उसी से उनकी भावना का पता चलता हैं श्री गांधी ने प्रतिनिधियों को एक नया सिद्धांत बतला कर धीरज बंधाया। उनका कहना है ''अस्पृश्यों के लिए कल्याणकारी कार्य करना हिंदुओं द्वारा अस्पृश्यता के पाप का प्रायश्चित करना है। जो धन एकत्र किया गया है, वह हिंदुओं के चंदे से एकत्र किया गया है। दोनों दृष्टिकोणों से हिंदुओं को ही संघ को चलाना है। नैतिकता या अधिकार से अस्पृश्य किसी सीट के लिए अपने अधिकार का औचित्य सिद्ध नहीं कर सकते है। श्री गांधी को इस बात का अहसास नही हुआ कि उन्होंने अपने इस उपदेश से अस्पृश्यों को कितना अपमानित किया । इससे उनके इस रूखे व्यवहार को छिपाया नहीं जा सकता। यदि श्री गांधी यही समझते हैं कि धन हिंदुओं द्वारा एकत्र किया गया है इसलिए अस्पृश्यों को यह पूछने का अधिकार नहीं कि धन कैसे खर्च किया जाएगा, तो कोई भी स्वाभिमानी अस्पृश्य उनके पास इस प्रकार नहीं जाएगा। सौभाग्यवश जो अस्पृश्य उनसे जा चिपके रहे, वही बेरोजगार और लफंगे थे, जो राजनीति को अपनी कमाई का धंधा बनाना चाहते है। परन्तु श्री गांधी को सोचना चाहिए कि इस विषय में वह जो कुछ कह रहे हैं, वह परिवर्तन के औचित्य पर लीपापोती ही है। इससे यह नहीं स्पष्ट होता है कि संघ के मूल उद्देश्यों में परिवर्तन का क्या कारण था? सवाल यह है कि ''श्री गांधी किसी समय अस्पृश्यों को संघ की प्रबंधक बोर्ड में रखने के इच्छुक थे और अब उन्हें संस्था से निकालने के पक्ष में क्यों हैं?

V

इंडियन सोशल रिफार्मर में पत्र के लेखक का यह कथन सत्य है कि अस्पृश्यों ने डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन सोसाइटी' से कोई द्वेष भाव नहीं रखा। वह सोसाइटी भी हरिजन सेवक संघ के समान अस्पृश्यों के बीच में कल्याण कार्य कर रही थी। हिंदुओं और अस्पृश्यों, दोनों ने पूरी लगन से कंधे से कंधा मिलाकर मिशन के कार्य को आगे बढ़ाया। लेखक का यह कहना सही नहीं है कि इसका कारण 'डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन' का अपनी प्रबंध समिति में कुछ अस्पृश्य लोंगों को रखना था। यह बिल्कुल सही है। इसी वजह से मिशन और अस्पृश्यों में द्वेष भावना नहीं थी और ठीक इसके विपरीत संघ और अस्पृश्यों के बीच विद्वेष मौजूद था। इसका कारण यह था कि मिशन का कार्य राजनीतिक उद्देश्यों से परे था, परन्तु संघ का उद्देश्य राजनीतिक था।

यह सच है कि मूल विचार संघ को राजनीति से बिल्कुल अलग रखना था। तीन नवंबर 1932 को जारी किए गए बयान में कहा गया था –

''संघ बिना किसी राजनीति के अपने कार्य को चालू रख सकता है और संघ का निश्चय है कि वह राजनीतिक अथवा धार्मिक किसी भी प्रकार के प्रचार से अपने को सम्बद्ध नहीं करेगा। इसीलिए प्रांतीय तथा केंद्रीय कार्यकारिणी के अध्यक्ष अपने कार्यकर्ताओं का चुनाव बड़ी सावधानी से करेंगे। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि संघ के पूर्णकालिक वेतनभोगी कार्यकर्ता राजनीति अथवा किसी वर्ग के धार्मिक प्रचार में भाग नहीं ले सकते।''

परन्तु इस घोषणा पर अमल कम हुआ, और उल्लंधन अधिक। इसका कारण यह था कि अस्पृश्यों को कांग्रेस के फंदे में लाने का लोभ संवरण नहीं किया जा सका। इसके लिए हरिजन संघ को उपयोग में लाया गया ताकि अस्पृश्य कांग्रेस की राजनीति स्वीकार कर सके और कांग्रेस की विचारधारा के प्रभाव में आकर उसकी हां मे हां मिलाने लगें। ऐसा भी हो सकता है कि अस्पृश्यों के लिए काम करने के साथ–साथ हरिजन सेवक संघ उन्हें कांग्रेस के सांचे में ढाल दें। अस्पृश्यों को जीवन संग्राम में लड़ने योग्य बनाने के साथ–साथ उन्हें अपना राजनीतिक क्षेत्र चुनने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना स्पष्टतः एक तरह का दान होगा। परन्तु हिन्दू ऐसे दान का कब तक समर्थन करते? अधिक समय तक नहीं। हिंदुओं द्वारा अस्पृश्यों पर, जो अत्याचार किए जाते रहे है, उसके प्रति उनमें पश्चाताप और आत्मग्लानि नहीं है। संघ जिस दान पर जीता है वह समाप्त हो जायेगा। यदि वह इससे बचना चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह हिंदुओं को बताए कि अस्पृश्य धर्म और राजनीति को लेकर हिन्दुओं के विरूद्ध नहीं है। परंतु इस वास्तविकता से इंकार नहीं किया जा सकता कि हरिजन सेवक संघ एक राजनीतिक संस्था है, जिसका प्रत्यक्ष लक्ष्य और उद्देश्य हैं– अस्पृश्यों को कांग्रेस में लाना।

मैं कुछ उदाहरण दे सकता हूं, जो मुझे महत्वपूर्ण लगते है। हरिजन सेवक संघ अपने कार्यकर्ताओं के सम्मेलन आयोजित करता हैं। सम्मेलन विभिन्न भाषाई अंचलों में संगठन के कार्य की प्रगति की समीक्षा और विचार तथा अनुभवों का आदान–प्रदान करने के लिए होते है। इसी प्रकार की एक सभा पूना में वर्ष 1939 में जून के पहले सप्ताह में हुई थी। मालूम हुआ कि उस सभा में एक ऐसे प्रस्ताव की योजना बनाई गई कि सरकार से कहा जाए कि पूना पैक्ट के अन्तर्गत की गई मतदान व्यवस्था बदली जाए और विभाजक मतदान को एकीकृत मतदान में बदला जाए। मैं पहले ही बता चुका हूं कि पूना पैक्ट के समय हथियार डाल देने पर कांग्रेस ने विभाजक मतदान प्रथा पर कितना जोर डाला और अस्पृश्यों के लिए यह कितनी खतरनाक बात थी। पैक्ट को विफल करने में कांग्रेस असफल रही। संघ ने उसका झंडा थाम लिया और यह भलीभांति जानते हुए कि अछूत उसका विरोध करते थे, एक गैर–राजनीतिक संस्था के लिए यह कितना आश्यर्चजनक प्रस्ताव था। यह तो वही बात हुई कि नशे में धुत्त शराबी ढोल पीटता फिरे कि उसने तो कभी छुई भी नहीं । हरिजन सेवक संघ पर अस्पृश्यों से प्रदर्शन कराने जैसे कार्यों पर रोक लगी हुई थी।

मैं यह कह सकता हुं कि हरिजन सेवक संघ की बम्बई शाखा ने अपने कांग्रेस विरोधी के कारण शहर में रहने वाली कुछ अस्पृश्य जातियों को काली सूची में दर्ज करने की नीति अपनाई । जातियों को जिन काली सूची में दर्ज किया गया था। उनके विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति बंद कर दी गई और अन्य शैक्षिक सहायता से उन्हें वंचित कर दिया गया। महार जाति जो अस्पृश्यों के राजनीतिक आंदोलन की अग्रणी रही थी जो सदैव कांग्रेसी के साथ लड़ाई लड़ती है, काली सूची में डाल दी गई और महार विद्यार्थियों के साथ उस समय तक भेद भाव किया जाता था, जब तक कि यह न सिद्ध कर दें कि वे कांग्रेस के विरूद्ध विचारों वाली संस्था में भाग नहीं लेते।

अंतिम उदारहण जो मैं प्रस्तुत कर रहा हूं, श्री ए.वी. ठक्कर से संबंधित हैं। वे हरिजन सेवक संघ के महामंत्री है। श्री ठक्कर बम्बई सरकार के पिछड़ी जाति बोर्ड के सदस्य भी हैं । इस बोर्ड की स्थापना 1929 में हुई थी। इसकी बैठक समय–समय पर होती हैं और वह अस्पृश्यों और पिछड़ी जातियों से संबधित विषयों पर सरकार को सलाह देता है।

बोर्ड की बैठक में श्री ठक्कर एक प्रस्ताव लाए थे, जिसमें सरकार से इस बात की सिफारिश की गई थी कि अस्पृश्य विद्यार्थियों को सरकार द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्ति में से, महार छात्रों को निकाल दिया जाए, क्योंकि महार जाति शिक्षा में काफी आगे बढ़ गई है। अतः उन्हें छात्रवृत्ति देना सरकारी धन का दुरूपयोग करना होगा। अतः उसे अन्य अस्पृश्य जातियों के लिए सुरक्षित रखा जाए। प्रस्ताव के तथ्यों का पता लगाने के लिए भेजा गया। जांच रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत के तथ्य गलत थे और यही भी ज्ञात हुआ कि महार आगे बढ़ जाने के बजाए शिक्षा के क्षेत्र में अन्य अस्पृश्य जातियों की अपेक्षा वास्तव में काफी पिछड़े हुए है। वह प्रस्ताव राजनीतिक कपट के सिवाय और कुछ नहीं था और वह भी उस व्यक्ति द्वारा, जो हरिजन सेवक संघ का महामंत्री था और कांग्रेस विरोधी होने के कारण उन्हें सजा देना चाहता था।

इन सब बातों से क्या सिद्ध होता है? क्या इससे यह साबित नहीं होता कि हरिजन सेवक संघ केवल नाम के लिए धर्मार्थ संस्था है और उसका मुख्य लक्ष्य अस्पृश्यों को कांग्रेसी जाल में फंसना, उन्हें हिंदुओं और कांग्रेस के पिट्ठू बनाना, उनके उन आंदोलनों को रोकना, जिनका लक्ष्य हो अपने आप को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में हिंदुओं के प्रभुत्व से छुटकारा दिलाना। क्या इस बात में भी कोई आश्चर्य है कि अस्पृश्य हरिजन सेवक संघ को इस कारण घृणा की निगाह से देखते है कि संघ पुचकार कर मारना चाहता है।

साभार :बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय
खण्ड–16 (पृष्ठ सं० 135 से 155 तक)
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

शेष भाग पिछले अकं का ....

दलित वर्ग की शिक्षा

II - 1854 से 1882 तक

6. कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने अपने 19 जुलाई 1854 के पत्र संख्या 49 में टिप्पणी की कि ''अब हमारा ध्यान संभवतः एक बात की ओर जाना चाहिए, जो कि अभी भी अधिक महत्वपूर्ण है और जिसको हमें स्वीकार करना होगा। अभी तक बहुत उपेक्षा की गई अर्थात जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए आवश्यक उपयोगी और व्यावहारिक ज्ञान किस प्रकार उन लोगों तक पहुंचाया जाए, जो अपने प्रयत्नों से शिक्षा प्राप्त करने में सर्वथा अक्षम है और हम चाहेंगे कि इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विशेष प्रयास करें, जिसके लिए हम भारी राशि मंजूर करने के लिए तैयार हैं।'' यह बिलकुल सही है कि इस पत्र ने इस देश में जन शिक्षा की नींव डाली। इस नीति के परिणामों पर सर्वप्रथम 1882 में भारतीय शिक्षा संबंधी हंटर आयोग ने पहली बार विचार किया। 28 वर्ष की उपलब्धियां निम्नांकित आंकड़ों से स्पष्ट हैं –

	प्राथमिक शिक्षा 1881–82 स्कूलों में छात्र संख्या	छात्रों की कुल संख्या का प्रतिशत
ईसाई	1521	1521
ब्राह्मण	63071	63071
अन्य हिन्दू	202345	202345
मुस्लिम	39231	39231
पारसी	3517	3517
आदिम जातियां और पर्वतीय आदिवासी	2713	2713
छोटी जातियों के हिन्दू	2862	2862
यहूदी और अन्य	373	373

माध्यमिक शिक्षा
1881–82

		मिडिल स्कूलों में छात्र संख्या	छात्रों की कुल संख्या का प्रतिशत	हाई स्कूलों में छात्र संख्या	छात्रों की कुल संख्या का प्रतिशत
ईसाई		1429	12.06	111	2.26
ब्राह्मण		3639	30.70	1978	40.29
अन्य हिन्दू	कृषक	624	5.26	140	2.85
	छोटी जातियां	17	1.4	–	–
	अन्य जातियां	3823	32.25	1573	32.04
मुस्लिम		687	5.80	100	2.04
पारसी		1526	12.87	965	19.66
आदिम जातियां और पर्वतीय आदिवासी		6	.05	–	–
अन्य (यहूदियों आदि सहित)		103	.07	92	.86

कालिज शिक्षा
1881–82

		कालिजों में छात्र संख्या	छात्रों की कुल संख्या का प्रतिशत
ईसाई		14	3
ब्राह्मण		241	50
अन्य हिन्दू	कृषक	5	1
	छोटी जातियां	0	0
	अन्य जातियां	103	21.3
मुस्लिम		7	1.5
पारसी		108	21.5
आदिम जातियां और पर्वतीय आदिवासी		0	0
अन्य (यहूदियों आदि सहित)		2	.04

7. ये आंकड़े क्या दर्शाते हैं? इनसे पता चलता है कि हालांकि सरकार की नीति जन शिक्षा की थी, परन्तु आम आदमी के लिए शिक्षा उतनी ही दुर्लभ थी, जितनी 1854 से पहले थी और हिन्दुओं की निम्नतम तथा आदिम जातियां अभी भी शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक पिछड़ी थी। यहां तक कि 1881–82 में भी इस प्रेसिडेंसी में इन समुदायों का एक भी छात्र कालिजों अथवा हाईस्कूलों में नहीं पढ़ता था। दलित जातियों को शिक्षा के मामले में अन्य जातियों के स्तर तक लाने में विफल होने का क्या कारण हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें फिर इस प्रेसिडेंसी में सरकार की शिक्षा नीति के इतिहास को देखना होगा।

8. 1854 के कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के पत्र में 40 साल बाद पहली बार यह स्वीकार किया गया कि सरकार का कर्तव्य है कि भारत के जन–जन तक शिक्षा का प्रसार किया जाए, परन्तु अभी भी ऐसे सुधार के लिए विरोधी लोग मौजूद थे, जिन्हें उस पत्र में वर्णित सिद्धान्त को लेकर भारी आशंकाएं थी और जो उस नीति को रद्द करने के लिए आंदोलन कर रहे थे। पिछड़ी जातियों के जीवन स्तर को उठाने के कारण शासन को भयंकर परिणामों का सामना करना पड़ सकता है। यह बात बोर्ड आफ कंट्रोल के प्रेसिडेंट लार्ड एलेनब्रो जैसे लोगों को अभी भी सता रही थी। लार्ड एलेनब्रो कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के अध्यक्ष को 28 अप्रैल 1858 के अपने पत्र में निम्नलिखित चेतावनी देने से नहीं हिचकिचाएः

सज्जनों! हाल ही में मुझे ऐसे अनेक पत्र मिले हैं जिनमें 1854 में कोर्ट आफ डायरेक्टर्स द्वारा दिए गए अनुदेशों के अंतर्गत भारत के विभिन्न भागों में शिक्षा की स्थिति की समीक्षा की गई है और मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे उनसे कोई ऐसा आभास नहीं हुआ कि उस समय स्थापित प्रणाली से अपेक्षित लाभ हुआ है। जब कि लगता है कि लागत में जिस वृद्धि की अपेक्षा की गई थी, वह रो रही है।

पैरा 11. मैं समझता हूं कि हम छोटी जातियों के लोगों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए बहुत कम प्रेरित कर पाते हैं और यदि हम शिक्षा का अपने मनोनुकूल विस्तार करने में सफल होते हैं, तो हमें श्रमिक वर्ग का अर्धिक बौद्धिक विकास करना होगा, भले ही इसमें अधिक धनाढ्य व्यक्तियों की उपेक्षा हो जाए।

पैरा 12. इसके परिणामस्वरूप किसी स्वस्थ समाज की स्थापना नहीं होगी। हमारी सरकार छोटी जाति के सर्वाधिक शिक्षित व्यक्ति की उस महत्वाकांक्षा को पूरा करने के साधन भी उपलब्ध नहीं करा सकी, जो हमने उनके मन में जगाई थी।

पैरा 13. हमें निर्धन व्यक्तियों का एक ऐसा असंतुष्ट समाज बनाना चाहिए, जिसका हमारे द्वारा दी गई उच्च शिक्षा के कारण जनसाधारण पर भारी प्रभाव हो।

पैरा 14. छोटी जातियों को शिक्षा और सभ्यता ऊंची जातियों से मिलनी चाहिए और इस प्रकार छोटी जातियों में एक नई शक्ति का संचार होना चाहिए, किन्तु शिक्षा और सभ्यता कभी भी नीचे से ऊपर की ओर नहीं जाती। यदि शिक्षा और सभ्यता केवल छोटी जातियों को उपलब्ध कराई जाए, तो इससे केवल विक्षोम पैदा होगा, जिसके पहले शिकार विदेशी होंगे।

पैरा 15. यदि हम शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं तो हमें सबसे पहले ऊंची जातियों के लोगों को शिक्षित करने का प्रयास करना चाहिए।

पैरा 16 इसके केवल दो रास्ते हैं, कालिजों की स्थापना की जाए, जिनमें केवल ऊंची जातियों को प्रवेश दिया जाए और सेना के पुनर्गठन में स्थानीय लोगों के उन्हीं बच्चों को कमीशन दिया जाये, जो इसे पाने के पात्र हैं।

9. अस्पृश्य जातियों के प्रति यूरोपीय अधिकारियों की इस चिढ़ को अंततः भारत मंत्री ने 1859 के अपने पत्र में दूर किया, जिसमें जन शिक्षा के लिए सरकार के दायित्व की बात दोहराई गई थी।

10. जैसा कि स्पष्ट है कि सरकार द्वारा जन शिक्षा के अपने दायित्व को स्वीकार करने से दलित जातियों को एक ऐसा लाभ मिला, जो केवल नाम मात्र का था, क्योंकि विभिन्न जिलों के स्कूल तो सर्वसाधारण के लिए खुले थे, परन्तु इनमें दलित जातियों के दाखिले का प्रश्न अभी हल होना था। ऐसा एक प्रश्न 1856 में भी उठा था, परन्तु सरकार का फैसला दलितों के पक्ष में नहीं था, जैसा कि बंबई प्रेसिडेंसी के जन शिक्षा निदेशक की 1856–57 की रिपोर्ट के निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट है :

पैरा 17. छोटी जातियों और बनवासी जन जातियों के लिए स्कूल सरकार की ओर से सीधे छोटी जातियों के लिए कोई स्कूल नहीं खोले गए हैं और सर्वोच्च सरकार ने ऐसे स्कूलों की लिए अनुमति नहीं दी है। कहने के लिए सरकार द्वारा पूर्णतः समर्पित आम स्कूल तो सभी जातियों के लिए खुले हैं। 1855–56 की मेरी रिपोर्ट के परिप्रेक्ष्य में सरकार ने निम्नलिखित आदेश दियाः ''अभी तक सरकार के सामने केवल एक ही मामला लाया गया है, जिसमें सरकारी स्कूलों में छोटी जातियों के छात्रों के प्रवेश का प्रश्न उठाया गया है। यह मामला एक महान छात्र का है, जिसकी ओर से जून 1856 में एक याचिका पेश की गई, जिसमें शिकायत की गई थी कि यद्यपि वह स्कूल की फीस देने के लिए तैयार था तथा उसे धारवाड़ गवर्नमेंट स्कूल में दाखिला नहीं दिया गया।''

इस अवसर पर सरकार को एक अति व्यावहारिक संकट का सामना करना पड़ा, जिसका संबंध एक प्रश्न पर विचार करने से था। प्रश्न यह था कि उनके अमूर्त अधिकार की धारणा उन स्थानीय लोगों की सामान्य भावनाओं के प्रतिकूल होती जिनकी यथासंभव जागृति के लिए सरकार के शिक्षा विभाग की स्थापना की गई है और जैसा कि कुछ संकोच के साथ उस समय पारित संकल्प में दिख पड़ेगा। यह फैसला किया गया कि एक अकेले व्यक्ति यानी केवल उस महान के पक्ष में जो पहली बार केवल सवर्ण जातियों के छात्रों वाले स्कूल में प्रवेश की याचना लेकर आगे आया था, यह ठीक नहीं रहेगा कि उसे सवर्णों के साथ जबरदस्ती बिठाया जाए और यह संभावित जोखिम उठाया जाए कि स्थानीय लोगों के लिए वह संस्था व्यर्थ सी ही हो जाए।

इस संबंध में बंबई सरकार की कार्यवाही पर भारत सरकार ने दिनांक 23 जनवरी 1857 के पत्र संख्या 111 में निम्नलिखित विचार प्रकट किएः

''गर्वनर जनरल इन काउंसिल का विचार है कि संभवतः बंबई सरकार ने इस बारे में बुद्धिमत्तापूर्ण कदम उठाया है, लेकिन उसमें मुझसे अर्थात (भारत मंत्री से) अपेक्षा की गई है कि मैं कहूं कि बालक को बंगाल की प्रेसिडेंसी के किसी सरकारी स्कूल में दाखिला दिए जाने से इंकार नहीं किया जाएगा।

इस पत्र के प्राप्त होने के बाद यह संकल्प किया गया कि भारत सरकार को यह आश्वासन दिया जाए कि यह सरकार ऐसे किसी साधन की यथाशक्ति उपेक्षा नहीं करेगी, जिसके द्वारा देश भर के स्कूलों का स्वरूप उतना विशिष्ट न हो जितना कि जाति के मामले में वे व्यवहार रूप में है, लेकिन शर्त यह है कि ऐसा करते समय सरकारी स्कूल की सामान्य प्रतिष्ठा पर आंच न आए और उनकी दक्षता बनी रहे और वह उद्देश्य सफल हो, जिसके लिए उनकी स्थापना की गई है। यह भी निश्चय किया गया कि इस बारे में जांच की जाए कि उस सिद्धान्त का व्यवहार पक्ष क्या है? जिसके बारे में कहा जाता है कि वह प्रचलित है और सरकारी स्कूलों की सामान्य उपयोगिता का कुप्रभाव डाल रहा है।

11. बंगाल में प्रचलित प्रणाली के बारे में की गई जांच से पता चला कि भारत सरकार की मान्यता के विपरीत बंगाल के अधिकारियों ने यह भार शिक्षा संबंधी जिला समितियों पर छोड़ दिया कि वे हर मामले में स्थानीय लोगों की भावनाओं को देखते हुए छोटी जातियों के छात्रों को प्रवेश दें या न दें। इसका नतीजा यह निकला कि दलित जातियां उपेक्षित रह गई, क्योंकि स्पृश्य जातियां उन्हें विद्या मंदिरों में घुसने नहीं देंगी, जिनकी स्थापना सरकार ने अपने समस्त प्रजाजनों के लिए की थी।

12. इन परिस्थितियों में 1854 के डिस्पैच में उल्लिखित जन शिक्षा व्यवहार रूप में दलित जातियों को छोड़कर शेष सभी को उपलब्ध थी। 1854 में दलित जातियों की शिक्षा पर से भी प्रतिबंध उठाया गया। वह केवल नाममात्र का प्रयास था। भले ही बहिष्कार न करने के सिद्धान्त की पुष्टि सरकार ने कर दी थी पर व्यवहार में बड़ी सफाई से उसकी अनदेखी की गई। अतः हम यह कह सकते हैं कि प्रतिबंध व्यवहार में पहले की तरह बना रहा।

दलितों को शिक्षित करने का जिम्मा जो संस्था ले सकती थी, वह केवल ईसाई मिशनरी थी। माउंट स्टुअर्ट एलफिस्टन के शब्दों में उन्हें 'दलित जातियां सर्वोत्तम जातियां लगी।' किन्तु सरकार धार्मिक तटस्थता पर

कृत–संकल्प थी और मिशनरी स्कूलों को सहायता नहीं दे सकती थी। यहां तक कि इस अवधि के प्रारम्भ में इस प्रेसिडेंसी ने कोई आर्थिक अनुदान नहीं दिया था, यद्यपि 1854 के शिक्षा संबंधी डिस्पैच में मिशनरी स्कूलों को अनुदान देने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया था।

13. इस गतिरोध को समाप्त करने के लिए सरकार ने दो उपाय किए: (1) छोटी जातियों के बच्चों के लिए अलग सरकारी स्कूलों की स्थापना की गई, और (2) अनुदान सहायता के नियमों में ढील देकर मिशनरी संस्थाओं को शिक्षा कार्य में विशेष प्रोत्साहन दिया गया। यदि ये दो उपाय न किए गए होते, तो दलित जातियों को शिक्षित करने के कोई परिणाम नहीं निकलते। 1882 में हंटर आयोग की समीक्षानुसार ये परिणाम अति अल्प थे।

14. 1882 के बाद 1923 में बंबई प्रेसिडेंसी की शिक्षा के इतिहास में नये विशेष अध्याय का सूत्रपात हुआ। उस साल प्राथमिक शिक्षा प्रांतीय सरकार के स्थान पर स्थानीय निकायों को सौंप दी गई। इसलिए यह युक्तिसंग होगा कि 1923 की स्थिति का जाएजा लिया जाए। बंबई प्रेसिडेंसी में 1923 में शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में विभिन्न वर्गों की स्थिति निम्नांकित सारणी में दशाई गई है :

प्रेसिडेंसी में लोगों की श्रेणियां	जनसंख्यानुसार क्रम	शिक्षानुसार क्रम		
		प्राथमिक	माध्यमिक	कालिज वाली
उन्नत हिन्दू	चतुर्थ	प्रथम	प्रथम	प्रथम
मध्य क्रम के हिन्दू	प्रथम	तृतीय	तृतीय	तृतीय
पिछड़े हिन्दू	द्वितीय	चतुर्थ	चतुर्थ	चतुर्थ
मुस्लिम	तृतीय	द्वितीय	द्वितीय	द्वितीय

15. इस सारणी में हमें पता चलता है कि शिक्षा की दृष्टि से इन विभिन्न जातियों की तुलनात्मक उन्नति में भारी विषमता है। जनसंख्या की दृष्टि से इन लोगों की जो श्रेणी है और शिक्षा को प्राप्त करने की दृष्टि से उनकी जो श्रेणी है, उसके अनुसार यदि इनकी तुलना की जाए तो हम देखते हैं कि मध्य क्रम जो आबादी की दृष्टि से प्रथम श्रेणी का है, वह कालेज की शिक्षा की दृष्टि से तृतीय श्रेणी का है, माध्यमिक शिक्षा की दृष्टि से तृतीय श्रेणी का है और प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से तृतीय श्रेणी का है। दलित वर्ग जो आबादी की दृष्टि से द्वितीय श्रेणी में है वह कालेज शिक्षा की दृष्टि से चतुर्थ श्रेणी अर्थात अंतिम श्रेणी में है, माध्यमिक शिक्षा की दृष्टि से अंतिम श्रेणी में और प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से भी अंतिम श्रेणी में है। मुसलमान जो आबादी की दृष्टि से द्वितीय श्रेणी और प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से द्वितीय श्रेणी में है, जब कि उन्नत हिन्दू जिन्हें आबादी की दृष्टि से चौथा स्थान प्राप्त हैं, उन्हें कालिज शिक्षा की दृष्टि से प्रथम स्थान, माध्यमिक शिक्षा की दृष्टि से प्रथम स्थान और प्राइमरी शिक्षा की दृष्टि से भी प्रथम स्थान प्राप्त है। इसके आधार पर हम निस्संकोच कह सकते हैं कि सापेक्षतः इस संबंध में 1882 की स्थिति की तुलना में कोई सुधार नहीं हुआ हैं।

16. उपरोक्त विवरण से जो बंबई प्रेसिडेंसी के जन शिक्षा निदेशक की 1923–24 की रिपोर्ट पर आधारित है, यही स्पष्ट होता है कि विभिन्न जातियों की शैक्षिक उन्नति में अन्तर है। परन्तु विभिन्न जातियों के बीच शिक्षा में अंतर कोई बड़ी बात न होती, यदि यह खाई बहुत गहरी न होती। जब तक हम विषमता के अंतर को न जान लें, तब तक हम किसी महत्वपूर्ण निश्चय पर नहीं पहुंच सकते। स्थिति को इस दृष्टि से स्पष्ट करने के लिए निम्नांकित सारणी प्रस्तुत है :

लोगों की श्रेणियां	लोगों की श्रेणी प्रति एक हजार छात्र	माध्यमिक शिक्षा आबादी के अनुपात में प्रति एक लाख छात्र	कालिज की शिक्षा आबादी के अनुपात में प्रति दो लाख छात्र
उन्नत हिन्दू	119	3000	1000
मुस्लिम	92	500	52
मध्य क्रम वर्ग	38	140	14
पिछड़ा वर्ग	18	14	शून्य और यदि हो भी तो एकाध

17. उपरोक्त आंकड़ो से पता चलता है कि प्राथमिक, माध्यमिक और कालिज शिक्षा में प्रत्येक समुदाय दूसरों से कितना आगे है। इनसे पता चलता है कि इस प्रेसिडेंसी में विभिन्न जातियों के बीच कितना अलग–अलग अंतर है। इससे पता चलता है कि कुछ जातियों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। उपरोक्त आंकड़ों से दो निर्विवाद तथ्य प्रकट होते हैं : (1) इस प्रेसिडेंसी में पिछड़े वर्गों की शिक्षा की स्थिति दयनीय है। आबादी की दृष्टि से उन्हें द्वितीय जैसा उच्च स्थान प्राप्त हैं, परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें ऐसा स्थान प्राप्त है, जो न केवल अंतिम है, बल्कि न्यूनतम भी है और (2) प्रेसिडेंसी के मुसलमानों ने शिक्षा के क्षेत्र में लम्बे–लम्बे डग भरे हैं, यहाँ तक कि 30 वर्ष की अल्प अवधि में उन्होंने न केवल मध्य क्रम तथा पिछड़े वर्ग जैसी अन्य जातियों को बहुत पीछे छोड़ दिया है, बल्कि वे ब्राह्मणों तथा संबंधित जातियों के निकट भी आ गए हैं।

18. इसका क्या कारण हो सकता है? इस शाश्वत प्रश्न का फिर वही उत्तर है, सरकार के असमान व्यवहार की नीति। दो वर्गों के प्रति बर्ताव कितना असमान रहा है, वह शिक्षा की पंचवर्षीय रिपोर्ट के अंशों से प्रकट है। शिक्षा के क्षेत्र में मुसलमानों के साथ किए गए व्यवहार के बारे में तीसरी पंचवर्षीय रिपोर्ट (1892–96) में दिए गए विचार उल्लेखनीय हैं :

''बंबई में मुस्लिमों की शिक्षा के आंकड़ों के संबंध में... निदेशक की टिप्पणी है कि 'यदि परिस्थितियां प्रतिकूल न होती' तो वृद्धि और अधिक होती। बंबई में बहुत पहले ही समझ लिया गया है कि मुसलमानों ने आबादी के अन्य वर्गों की अपेक्षा सार्वजनिक संस्थाओं का अधिक उपयोग किया... मुसलमानों की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए क्या किया गया, इस आम प्रश्न पर निदेशक ने कहा है :

''पहली बात तो यह है कि हर जिले में डिप्टी या सहायक डिप्टी इंस्पेक्टर के रूप में एक मुसलमान अधिकारी की नियुक्ति की गई है और हमारे यहां शोलापुर और हैदराबाद में तीन स्नातक मुसलमान डिप्टी हैं, जबकि चौथे को राजस्व विभाग में उच्च वेतनमान पर भेज दिया गया है। इस तरह एक भी जिला ऐसा नहीं है, जहां की मुस्लिम आबादी से कर्मचारी वर्ग का सम्पर्क नहीं है। फिर बंबई, कराची और जूनागढ़ (काठियावाड़ का मुस्लिम राज्य) में मुसलमानों के लिए हाई स्कूल खोलने के लिए विशेष प्रयत्न किए गए हैं, जिनमें फीस कम है। अन्य अंजुमनों ने अन्यत्र छोटे–छोटे स्कूल भी खोले हैं। कुछ क्षेत्रों में विभाग ने भी उनके हित में विशेष स्तर रखे हैं और विशेष स्कूल खोले हैं और प्रांतीय तथा स्थानीय लोगों की एक तिहाई छात्रवृत्तियां उनके लिए आरक्षित रखी हैं। खान बहादुर काजी शहाबुद्दीन (कभी बड़ौदा के दीवान थे) ने उनके लिए विशेष छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की और सिंध में खैरपुर के देशी राज्य के वारिस ने भोजन संबंधी कुछ छात्रवृत्तियां आर्ट कालिज के छात्रों को दी हैं (मैनें बड़ी कठिनाइयों से इन्हें भरा है हालांकि वे 25 रूपये प्रतिमास की है) फीस के मामले में प्राथमिक स्कूलों में मुसलमानों के साथ बहुत उदारता बरती जाती है। उन्हें प्रशिक्षण कालिजों में बुलाने के लिए विशेष नियम बनाए गए हैं और उनकी परीक्षा प्रणाली हिन्दुओं की अपेक्षा सरल है। बंबई की संयुक्त स्कूल समिति ने काफी अर्से से मुसलमानों में शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए एक मुसलमान डिप्टी इंस्पेक्टर की नियुक्ति की ––''

19. दलित जातियों की शिक्षा के बारे में पांचवी पंचवर्षीय रिपोर्ट (1902–07) में व्यक्त विचारों की तुलना इससे करें :

959 बंबई ''बंबई की सेन्ट्रल डिवीजन में छोटी जातियों के छात्रों को स्कूलों में निःशुल्क दाखिला दिया जाता है और उन्हें पुस्तकों, स्लेटों आदि के रूप में उपहार दिए जाते हैं –– काठियावाड़ में दलित जातियों के केवल तीन छात्र पढ़ रहे हैं। दक्षिणी डिवीजन में उनके लिए 72 विशेष स्कूल अथवा कक्षाएं चल रही हैं, जिन्हें अधिकांश अप्रशिक्षित अध्यापक चला रहे हैं।''

20. इस असमान व्यवहार का जन्मदाता हंटर आयोग है। हंटर आयोग ने मुसलमानों का कितना पक्ष लिया, यह स्पष्ट हो जाएगा, यदि हम मुसलमानों के लिए इसके द्वारा की गई सिफारिशों की तुलना दलितों के हितों के संबंध में की गई उसकी सिफारिशों से करें। मुसलमानों के बारे में इस आयोग ने 17 सिफारिशें की थीं। उनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय है :

1. मुसलमानों में शिक्षा को दिया जाने वाला विशेष प्रोत्साहन स्थानीय नगरपालिका और प्रान्तीय कोष पर वैध प्रभार माना जाए।

7. मुसलमानों में उच्च अंग्रेजी शिक्षा को, चूंकि यह ऐसी शिक्षा है, जिसमें उसी समुदाय का विशेष सहायता की जरूरत है, उदारतापूर्वक प्रोत्साहित किया जाए।

8. जहां जरूरी हो, मुसलमानों के लिए विशेष क्रमबद्ध छात्रवृत्तियां आरम्भ की जाएं, जो (क) प्राथमिक स्कूलों और मिडिल स्कूलों में भी; (ख) मिडिल स्कूलों और हाईस्कूलों में भी; (ग) दसवीं कक्षा और प्रथम कला परीक्षाओं के परिणामों के आधार पर और कालिजों में भी दी जाएं

9. सरकारी कोष से चलाए जाने वाले स्कूलों को सभी कक्षाओं में निःशुल्क रखे जाने वाले छात्रों का एक निश्चित अनुपात मुसलमान छात्रों के लिए स्पष्ट रूप से आरक्षित किया जाए।

10. जहां पर मुसलमानों के कल्याण के शैक्षिक धर्मार्थ कोष हैं वे सरकार के प्रबंधन में हैं, वहां पर प्रत्येक धर्मार्थ खाते के कोष को केवल मुसलमानों में शिक्षा के प्रसार पर खर्च किया जाए।

11. जहां मुसलमान, निजी संस्थाओं अथवा व्यक्तियों के प्रबंध के अंतर्गत कार्य कर रहे हैं वहां सहायतानुसार प्रणाली के आधार पर अंग्रेजी की शिक्षा देने वाले स्कूलों अथवा कालिजों को स्थापित करने के लिए उन्हें उदार सहायतानुदान के रूप में प्रोत्साहन दिया जाए।

12. जहां जरूरी हो, वहां मुसलमान शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए नार्मल स्कूल अथवा कक्षाएं खोली जाएं।

14. मुसलमानों के प्राथमिक स्कूलों के निरीक्षण के लिए अब तक की अपेक्षा अधिक मुसलमान निरीक्षक अधिकारियों की नियुक्ति की जाए।

17. शिक्षित मुसलमानों और अन्य वर्गों को दिए जाने वाले संरक्षण को प्रश्न पर स्थानीय सरकारों का ध्यान दिलाया जाए।

21. हंटर आयोग ने जो सिफारिशें की हैं, इनमें से प्रत्येक दलित जातियों के हित में भी आवश्यक थी। परन्तु जब हम पिछड़ी जातियों के हितों में आयोग द्वारा की गई सिफारिशों का विश्लेषण करते हैं, तो वे ऐसे निदेश नहीं देती कि पिछड़ी जातियों की शिक्षा को सरकारी कोष पर वैध प्रभार माना जाए, छात्रवृत्तियां उनके लिए आरक्षित की जाएं, उनकी शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं की देखरेख के लिए विशेष निरीक्षक रखे जाएं अथवा उनमें शिक्षा के प्रसार को बढ़ावा देते हुए उन्हें सार्वजनिक संरक्षण प्रदान किया जाए। आयोग ने तो मात्र इतना कहा है कि (1) इस सिद्धान्त की अब पुष्टि की जाए कि जाति के आधार पर किसी छात्र को स्कूल या कालिज में प्रवेश पाने से इंकार नहीं किया जाए और यह सिद्धान्त ऐसी प्रत्येक संस्था पर लागू किया जाए, जो विशेष जातियों के लिए आरक्षित नहीं है और जो सरकारी कोष, चाहे वह प्रांतीय हो, नगरपालिका का हो अथवा स्थानीय हो, से पूरी तरह चलाई जा रही हैं। (2) जिन क्षेत्रों में ऐसे छात्र पर्याप्त संख्या में हैं, जिनसे कि अलग स्कूल या कक्षाएं खोली जा सकें और जहां सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल उन्हें पर्याप्त शिक्षा नहीं देते हैं, वहां छोटी जातियों के बच्चों के लिए विशेष पृथक् स्कूल या कक्षाएं खोली जाएं। वास्तव में आयोग ने मुसलमानों के बारे में जो सिफारिशें की थीं, वे उनके बजाए पिछड़ी जातियों के हित साधन के लिए जरूरी थीं। चूंकि हंटर आयोग को भी, जिसकी अध्यक्षता ऐसा व्यक्ति कर रहा था, जिसके मन में मुसलमानों के प्रति प्रत्यक्ष सहानुभूति थी, स्वीकार करना पड़ा कि ''1871–73 की जांच से यह सिद्ध हो गया है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र के अलावा मुसलमानों के पिछड़ेपन को बढ़ा चढ़ाकर बताने की प्रवृत्ति रही है।'' इसके बावजूद हंटर आयोग ने जो सिफारिशें की हैं वे वही दो हैं, जिनका उल्लेख किया गया है। दलितों को इन दोनों सिफारिशों से भी कोई विशेष लाभ नहीं मिलता। सिद्धांत की पुष्टि निरर्थक है, भले ही वह पांचवीं बार की गई हो। आयोग द्वारा लगाए गए परन्तुक के अतंर्गत इस सिद्धान्त को व्यवहार में नहीं लाया जाना था। इसी प्रकार दलित जातियों के लिए अलग से स्कूल खोलना भी संभव नहीं था। जिस सरकार के सामने प्राथमिक शिक्षा देने का कार्य है, उसके लिए अलग स्कूल खोलना संभव नहीं है, क्योंकि उसमें अतिरिक्त खर्च होगा। इसके अलावा यह परन्तुक कि ऐसे स्कूल उन स्थानों पर खोले जाएं, जहां पिछड़ी जातियां बहुतायत में हैं, सिफारिशों को नकारने के लिए पर्याप्त था। इसका सीधा सा कारण यह है कि देहातों में एक ही बस्ती में पिछड़ी जातियां मुश्किल से बड़ी संख्या में मिल सकती हैं।

22. यह समझना मुश्किल है कि हंटर आयोग ने पिछड़ी जातियों की शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं की ओर इतना नगण्य ध्यान क्यों दिया? यदि उसने मुसलमानों के प्रति उदारता को आवश्यक समझा था, तो उसे कम से कम यह

तो देखना चाहिए था कि न्याय की दृष्टि से तो यह उदारता पिछड़ी जातियों के प्रति होनी चाहिए थी जो शिक्षा, धन और सामाजिक हैसियत में मुसलमानों से कहीं पीछे थीं। जब एक बार हंटर आयोग ने पिछड़ी जातियों को पृष्टि भूमि में धकेल दिया है, तो वे वहीं पर रहें और सरकार ने उनकी कभी कोई ध्यान नहीं दिया। इस उपेक्षा की मिसाल के तौर पर दिल्ली में भारत सरकार के शिक्षा विभाग के 21 फरवरी 1913 के संकल्प की ओर ध्यान दिलाया जा सकता है। भारत सरकार की ओर से अब तक जारी संकल्पों में यह सबसे महत्वपूर्ण था जिसमें उसने फैसला किया कि ''कई प्रांतों में शिक्षा की व्यापक प्रणालियों के प्रसार के लिए धन उपलब्ध होने पर सरकारी खजाने से भारी अनुदान देकर स्थानीय प्रशासनों की मदद की जाए।'' उस संकल्प में उन्होंने प्रांतीय सरकार को विशेष रूप से बताया कि 'अधिवासी जाति' तथा मुस्लिम जाति की शिक्षा संबंधी आवश्यकताएं क्या–क्या हैं? परन्तु पूरे संकल्प में कहीं भी पिछड़ी जातियों का कोई उल्लेख नहीं है। बंबई सरकार ने झटपट सुझाव स्वीकार कर लिया और 1913 में मुसलमानों में शिक्षा के प्रसार के संबंध में सिफारिश करने वाली शिक्षा समिति में एक मुसलमान को शामिल कर लिया। सरकार की ऐसी आपराधिक उपेक्षा के प्रति कोई क्षोम उचित ही होगा, खास तौर पर जब यह अनुभव किया जाए कि 1913 के बाद भारत सरकार ने, जो भारी अनुदान दिए थे, वे महामहिम सम्राट की उदार घोषणा को मूर्त रूप देने के लिए दिए गए थे। सम्राट ने यह घोषणा उस समय की थी, जब वह 6 जनवरी 1912 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के मानपत्र का उत्तर दे रहे थे। उन्होंने कहा था :

''मेरी यह कामना है कि इस पूरे देश में स्कूलों और कालिजों का जाल बिछ जाए जहां से वफादार साहसी और उपयोगी नागरिक बनकर निकलेंगे, जो उद्योग और कृषि और जीवन के सभी क्षेत्रों में अपने बलबूते पर टिक सकेंगे। मेरी यह भी कामना है कि मेरी भारतीय प्रजा के घरों में ज्ञान के प्रसार से प्रकाश फैले। उस ज्ञान के फलस्वरूप चिन्तन, सुख–सुविधा, श्रम और स्वास्थ्य का एक उच्चतर स्तर आए। शिक्षा के माध्यम से ही मेरी कामना फलेगी और फूलेगी और भारत में शिक्षा का उद्देश्य मेरे हृदय का सबसे अति प्रिय धर्म होगा।''

IV 1923 के बाद

23. सुधार कानून 1921 से लागू हुआ। शिक्षा को एक मंत्री के अधीन हस्तांतरित कर दिया गया और स्वाभावि रूप से उससे तीव्र विकास की अपेक्षा की गई। लेकिन दलित जातियों को इसमें संदेह था कि शिक्षा के विषय को मंत्रियों के हाथ में देने से उन्हें कोई लाभ होगा भी। इस मामले में वे नौकरशाही के हाथों काफी कष्ट उठा चुके थे। पहले चरण में तो नौकरशाहों ने शिक्षा का उन्हें लाभ उठाने ही नहीं दिया। दूसरे चरण में नौकरशाही ने उन्हें शिक्षा प्रदान करने में कोई सहायता नहीं की। इसके साथ ही नौकरशाही इस सिद्धान्त को नकारने में अति कुशल थी कि पिछड़ी जातियों को शिक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार है। पिछड़ी जातियां इतनी कुशल नहीं थी कि नौकरशाही का स्थान लेने के लिए संघर्षरत भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग से उसी कुशलता से अपने अधिकार का आग्रह कर सके। चूंकि भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग की जड़े उस अतीत में जमी हुई थीं, जिसमें पिछड़े वर्ग को कोई मान्य अधिकार नहीं थे। अतः पिछड़े वर्ग को आशंका थी कि वर्तमान में भी अतीत को पुनर्जीवित कर दिया जाए।

24. दुर्भाग्य से उनकी आशंकाएं सही साबित हुई और यह कहना सही हो सकता है कि बंबई प्रेसिडेंसी में इन सुधारों के अधीन पिछड़ी जातियों की स्थिति बद से बदतर हो गई। मौजूदा हालात में यह एक अति कटु टिप्पणी लग सकती है लेकिन अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम (बंबई प्रेसिडेंसी अधिनियम संख्या 4,1923) ने बंबई प्रेसिडेंसी के पिछड़े वर्गों के लिए जो स्थिति पैदा कर दी, उसे किसी अन्य प्रकार व्यक्त नहीं किया जा सकता। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम एक अति महत्वपूर्ण दृष्टि से पाखंड है। यह प्रणाली पहले की ही भांति स्वैच्छिक है और सदा ही वैसी ही बनी रहेगी, क्योंकि न तो उसे अनिवार्य बनाने के लिए कोई दायित्व डाला गया है और न ही उस दायित्व की पूर्ति के लिए कोई समय सीमा निर्धारित की गई है। इसके आलावा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम ने प्राथमिक शिक्षा पर नियंत्रण के लिए प्रशासनिक तंत्र में अति अनाप शनाप परिवर्तन कर दिए। अभी तक तो प्राथमिक शिक्षा का नियंत्रण तथा प्रबंधन प्रांतीय सरकार को सौंपा गया था और प्राथमिक शिक्षा के लिए सारा खर्च प्रांतीय राजस्व से मिलता था, सिवाए स्थानीय बोर्डों के उस छोटे से अनुदान के जो कतिपय के सुस्पष्ट स्त्रोतों से उनके राजस्व का एक तिहाई होता था। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम के अधीन स्थिति पलट गई है। अब स्कूलों का नियंत्रण और प्रबंधन जिला स्कूल बोर्डों को सौंप दिया गया है (जो स्थानीय जिला बोर्डों की समितियां हैं) और बजाए इसके कि स्थानीय बोर्ड प्रांतीय सरकार को अनुदान राशि दे उल्टे प्रांतीय सरकार से अपेक्षा की जाती है कि वह जिला स्कूल बोर्डों को अनुदान दे। इतनी निरकुंश भावना से यह परिवर्तन किया गया कि अधिनियम इन स्कूल बोर्डों को अपना निजी कार्यकारी अधिकारी नियुक्त करने का अधिकार देता है। ऐसा विशेषाधिकार तो बंबई नगरपालिका जैसे उन्नत निगम को भी नहीं दिया गया है।

25. सभा का विचार है कि यह परिवर्तन बहुत क्रांतिकारी है और निश्चय ही यह प्रेसिडेंसी के सर्वोत्तम हित विशेषतः पिछड़ी जातियों के हित के प्रतिकूल होगा। यह बात ध्यान में रखनी ही होगी कि शिक्षा की महती आवश्यकता को जनता के सभी वर्गों ने नहीं समझा है। आम धारणा यह है कि शिक्षा से सरोकार केवल ब्राह्मणों का ही है। केवल चंद लोग ही ऐसे है, जिन्होंने शिक्षा के प्रसार की राजनीति अपनाई है। स्कूल बोर्ड में तो ऐसे अनेक अनभिज्ञ ग्रामीण होंगे जो इस परम्परा में पले हों कि शिक्षा से को केवल ब्राह्मणों का ही वास्ता है। अतः वे तो उसके प्रति उदासीन ही रहेंगे और उसे अनिवार्य बनाए जाने का विरोध ही करेंगे। यदि शिक्षा का कुशलता से संचालन करना है, तो इसे कुछ समय के लिए विधान परिषद के सीधे नियंत्रण में प्रांतीय सरकार के पास ही रहने दिया जाए वहां कुछ ऐसे राजनेता होंगे जो शिक्षा की आवश्यकता को समझते होंगे। अतः शिक्षा का काम शिक्षा विभाग से लेकर स्कूल बोर्डों को सौंप देने का अर्थ होगा कि उसे विश्वासपात्र क्षेत्रों से छीनकर अयोग्य हाथों में सौंप दिया गया है। यदि हस्तांतरण सामान्य रूप से शिक्षा की प्रगति में बाधक है, तो यह दलितों के लिए तो विशेष रूप से हानिकारक है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भले ही इस बात में कुछ संदेह हो सकते हैं कि आम आदमी शिक्षा में विश्वास रखता है या नहीं, परन्तु एक बात निश्चित है कि वह पिछड़े वर्गों को शिक्षित बनाने में विश्वास नहीं रखता। छोटी जातियों को प्राथमिक शिक्षा दिए जाने के बारे में ऊंची जातियों का जो रवैया है, उसके विषय में हंटर आयोग ने कहा है, ''अनेक गवाहों ने बयान दिया है कि छोटी जातियों के बालकों को स्कूलों में दाखिला दिए जाने का स्पष्ट विरोध किया गया है। मद्रास के गवाह ने उस मामले का उल्लेख किया है जिसका संबंध कालीकट में प्राचीन दास जाति चेरूमांओं के लिए खोले जा रहे स्कूल से था, परन्तु नायर और तिया स्कूल के रास्ते में ही लड़कों के हाथों से उनकी पुस्तकें छीन लिया करते थे। इस विषय पर विचार–विमर्श के दौरान हमें बताया गया कि मध्य प्रांत और बंबई के कुछ भागों में ग्रामीण समुदाय ने छोटी जातियों की शिक्षा पर विशेष आपत्तियां इस आधार पर उठाई कि शिक्षा से उनका जीवन उन्नत हो जाएगा और उन्हें प्रेरणा मिलेगी कि वे अपने वर्तमान दासता भरे जीवन से मुक्ति पाने का प्रयास करें। बंबई के जन शिक्षा निदेशक ने अपनी 1896–97 की रिपोर्ट में एक मामले का उल्लेख किया, जिसमें कैरा जिले के स्थानीय अधिकारियों ने इस कार्यवाही की अपेक्षा की कि छोटी जातियों के छात्रों को स्कूल में दाखिला दिया जाए। इसका फल यह हुआ कि पांच–छः बड़े–बड़े स्कूल वर्षों तक बंद पड़े रहे और एक गांव में तो छोटी जातियों के लोगों की झोंपड़ियां और फसलें जला दी गईं और दो वर्षों तक के लिए उस गांव पर भारी जुर्माना ठोक दिया गया।''

26. जब ग्रामीण समुदायों का ऐसा व्यवहार हो तो कैसे यह आशा की जा सकती है कि ऐसे स्कूल बोर्ड जिसमें अधिकांश ग्रामीण समुदायों के लोग होंगे, कैसे दलित जातियों की शिक्षा के मामले में अपने कर्तव्य का निष्ठा से पालन करेंगे? शिक्षा का नियंत्रण स्कूल बोर्डों के हाथ में देने से वही स्थिति होगी जैसे अभियोक्ता को शासक बना दिया जाए। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पिछड़ी जातियों ने स्कूल बोर्डों को प्राथमिक शिक्षा का नियंत्रण दिए जाने की निंदा करने वाले संकल्प पारित किए हैं। यदि दलित जातियों के प्रतिनिधियों को पर्याप्त संख्या में बोर्डों में रखा जाता तो कुछ राहत मिलती। पर ऐसी बात नहीं हैं। दलित जातियों को काउंसिल से लेकर स्थानीय बोर्डों तक के स्वशासी निकायों में प्रतिनिधित्व देने की योजना सरकार ने उस अभिभावक की तर्ज पर बनाई है जो नहीं चाहता कि उसके संग्रहालय में हर प्रजाति का एक से अधिक नमूना हो। सरकार स्थानीय जिला बोर्ड में दलित जातियों का एक ही प्रतिनिधि मनोनीत करती है जब कि कुछ सदस्य 40 के करीब होते हैं और स्कूल बोर्डों से कहा गया है कि वे दलित जाति के एक सदस्य को सहयोजित करें। सहयोजन के सिद्धान्त में सदा गलत व्यक्ति के सहयोजन का खतरा रहता है। हाल ही में स्कूल बोर्ड के चुनावों में पूर्वी खानदेश के दलित वर्गों को इस खतरे का सामना करना पड़ा। लेकिन यदि सही व्यक्ति को सहयोजित कर लिया जाता है तो 15 सदस्यों की विरोधी टोली में, जो स्कूल बोर्ड की अधिकतम संख्या है, एक अकेला व्यक्ति क्या कर सकता है।

सेवा में,

नाम ....

पता ....

....

....

27. यदि सरकार दलित जातियों के बीच शिक्षा का प्रसार सच्चे मन से करना चाहती है, तो कुछ ऐसे उपाय हैं जो सरकार को करने ही चाहिए। सभा का अपना विश्वास है कि सरकार को इस संबंध में क्या करना चाहिए और उन्हें क्रमवार प्रस्तुत करना चाहती है :

1. जब तक अनिवार्य शिक्षा अधिनियम को रद्द नहीं किया जाता और स्कूल बोर्डों को प्राथमिक शिक्षा का हस्तांतरण बंद नहीं किया जाता तब तक सभा को आशंका है कि दलित वर्गों की शिक्षा के हित को भारी आघात लगता रहेगा।

2. जब तक प्राथमिक शिक्षा की अनिर्वायता को बाध्यकारी नहीं बनाया जाता और जब तक प्राथमिक स्कूलों में दाखिले के नियम का कठोरता से पालन नहीं किया जाता, तब तक पिछड़ी जातियों की शैक्षिक प्रगति के लिए आवश्यक परिस्थितियां उत्पन्न नहीं होगीं।

3. जब तक हंटर आयोग द्वारा मुसलमानों की शिक्षा के बारे में की गई सिफारिशों को दलित जातियों की शैक्षिक प्रगति के लिए भी लागू नहीं किया जाता तब तक उनकी प्रगति अधूरी ही रहेगी।

4. जब तक दलित जातियों को सरकारी नौकरियों में नहीं लिया जाता, तब तक उनका शिक्षा के प्रति अनुराग नहीं बढ़ेगा।

28. सभा प्रेसिडेंसी में सुधारों के अनुसार दलित जातियों की शिक्षा के संबंध में ये टिप्पणियां करते हुए यह भूलना नहीं चाहती कि दलित जातियों की शिक्षा के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं, जिनके अनुसार कुछ छात्रावास खोले गए हैं और उच्च शिक्षा के लिए कुछ छात्रवृत्तियां भी दी गई हैं। परन्तु सभा यह कहना चाहती है कि जब तक प्राथमिक शिक्षा के प्रसार को सुनिश्चित करने के लिए कदम नहीं उठाए जाते, तब तक दलित जातियों की उच्च शिक्षा के लिए प्रावधान करना व्यर्थ होगा। साथ ही यह भी भरोसा नहीं कि ये रियायतें जारी भी रहेंगी। दूसरी ओर वे शिक्षा के प्रभारी मंत्री की विशेष नीति पर और विधायी परिषद में दलित जातियों की मतदान क्षमता पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। ये दोनों अस्थिर आधार हैं और उन पर निर्भर नहीं किया जा सकता।

साभार
बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर
खण्ड–4, (पृष्ठ सं० 123 से 146 तक)
डॉ. अम्बेडकर